ग्रन्थ-संख्या—१३०

प्रकाशक तथा विक्रेता
भारती-भण्डार
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण
सं० २००५
मूल्य २॥)

मुद्रक
महादेव एन० जोशी
लीडर प्रेस, प्रयाग

-अपने सब से छोटे भाई

नरेन्द्र के लिये

-स्नेह और श्रद्धा के साथ

"..............But we are all men,
In our own natures frail, and capable
Of our flesh, few are angles."

W. Shakespeare

क्रम

चरवाहे—एक अध्ययन

चरवाहे

मैमूना

चुम्बक

चिलमन

चमत्कार

खिड़की

सूखी डाली

इन नाटकों को खेलने से पहले लेखक अथवा प्रकाशक से आज्ञा लेना आवश्यक है।

इन में से कुछ नाटकों के रेडियो संस्करण, उर्दू में, लेखक ने आल इंडिया रेडियो दिल्ली के लिये, अपनी नौकरी के दिनों में तैयार किए थे, जिनको केवल ब्राड-कास्ट करने का अधिकार आल इंडिया रेडियो के पास है, परन्तु वर्तमान हिन्दी रूप में नाटक न केवल उन रेडियो उर्दू संस्करणों से भिन्न हैं वरन् हिन्दी में आते आते बहुत बदल गए हैं। वर्तमान हिन्दी रूप में किसी नाटक को ब्राड-कास्ट करने के लिये लेखक की आज्ञा लेना अनिवार्य्य है।

चरवाहे-एक अध्ययन।

"चरवाहे" हिन्दी मे अश्क जी के एकाकी नाटकों का तीसरा संग्रह है। छः सात वर्ष पहले इसके अधिकाश नाटक 'हंस', 'वीणा', 'रानी' आदि पत्रिकाओं मे छप चुके है। किन्तु, यद्यपि उर्दू मे न केवल ये, बल्कि इनके बाद लिखे नाटक भी पुस्तक रूप में संग्रहित हो चुके हैं, हिन्दी मे कई कारणा से इन्हे पाठको के समक्ष प्रस्तुत नही किया जा सका।

"चरवाहे" से पहले अश्क जी के दो एकाकी संग्रह—"देवताओ की छाया मे" और "तूफान से पहले"—हिन्दी मे छप चुके हैं। यद्यपि "देवताओ की छाया मे" बहुत पहले छपा और "तूफान से पहले" हाल ही में प्रकाशित हुआ है, तो भी दोनों संग्रहों के नाटक बहुत सी बातों मे एक दूसरे से मिलते जुलते हैं और "चरवाहे" के नाटकों से सर्वथा भिन्न हैं।

बात वास्तव मे यह है कि उन दोनो संग्रहो के नाटक अपने समस्त कला-कौशल, हास्य-व्यग्य, दुख-सुख, यथार्थ अथवा आदर्श की अभिव्यक्ति के बावजूद सीधे सरल और बोध-गम्य हैं। "लक्ष्मी का स्वागत" का रौशन "अधिकार का रक्षक" के मि० सेठ "पापी" का शान्तिलाल और "तूफान से पहले" का घीसू हमारे जाने माने पात्र हैं। इन नाटकों को पढते पढ़ते पाठक सहसा कह उठता है कि "अरे डाक्टर वर्मा तो हमारे ही नगर के डेंटिस्ट हैं" अथवा—"भई बनवारी जैसी जोंक तो एक बार हमे भी चिमट गई थी" या फिर "यह तौलियो का झगड़ा तो हमारे पड़ौस ही मे नित्य होता है......"

नाटको के पात्र, घटनाएँ यहाँ तक कि सम्भाषण तक हमे जाने पहचाने लगते हैं। उन सभी नाटको मे कुछ ऐसा अलबेलापन है जो

हास्य और व्यग्य, दुख और सुख के तीर एक ही कमान से अतीव सरलता के साथ छोड़ता चला जाता है।

"चरवाहे" के नाटकों मे इस अलवेलेपन अथवा हास्य व्यंग्य, दुख और सुख की अभिव्यक्ति का अभाव नहीं, किन्तु यहाँ अश्क जी ने जो कुछ कहना चाहा है, वह साकेतिक ढग से प्रतीकों (Symbols) की सहायता लेकर कहा है। इनकी प्रकट सरलता भी प्रोद्द मे कई स्पष्ट अथवा अस्पष्ट प्रतीक लिए हुए है। इन नाटको के पात्र जाने माने लगने पर भी कुछ विचित्र से अजनवीपन का आवरण ओढ़े दिखाई देते हैं और कई वार तो वे पात्र, पात्र न रह कर स्वय प्रतीक अथवा संकेत बन जाते है। यही कारण है कि सरल होने पर भी ये कई स्थलों पर वोध-गम्य नही रहे। और यहीं ये पहले के नाटको से भिन्न हैं।

मुझे तीन साढ़े तीन वर्ष पहले की एक घटना याद आती है। हम लोग तव दिल्ली मे रहते थे। एक सध्या कुछ क्रय-विक्रय करके, हम फतेहपुरी से ट्राम मे बैठे वापस आ रहे थे कि तेलीवाड़ा से एक युवक ट्राम पर सवार हुआ और हमारे सामने की सीट पर आ बैठा। अश्क जी नोट पैड मे किसी कविता की पक्तियाँ लिख रहे थे। उनकी आदत है कि इक्का हो, ट्राम हो अथवा गाड़ी हो, कई बार जब प्रेरणा होती है तो निरन्तर लिखते हैं। उनके इस स्वभाव को कई वार मित्र बनावट (Pose) का नाम देते हैं, पर वे कभी इसकी परवाह नहीं करते। स्वयं मैं कई वार झुँझला उठती हूँ, किन्तु, यद्यपि कई वार वे मेरी इस झुंझलाहट की रक्षा कर लेते है परन्तु प्रायः स्वभाव से विवश कापी पेंसिल साथ रख लेते हैं।

वह युवक कदाचित अश्क जी को पहचानता था, पर अश्क जी

उसे न जानते थे। कुछ क्षण वह उन्हे लिखते देखता रहा, फिर जब रुकने पर अश्क जी ने सिर उठाया तो मुस्करा कर, "कहिए कविता लिख रहे हैं," से उसने जो आरम्भ किया तो अपना सारा परिचय देने और यह बताने के पश्चात् कि उसने अश्क जी की कौन कौन सी कृति पढ़ी है और किस किस को वह पसन्द करता है, अन्त में उसने अपनी तान, "लेकिन आप का 'चरवाहे' मेरी समझ में नहीं आया" पर तोड़ी।

'चरवाहे' उसी महीने 'हंस' मे छपा था ! अश्क जी ने हँस कर पूछा, "आप की समझ मे क्या नहीं आया ?"

यही कि आप उसमे क्या कहना चाहते हैं ? कि वह आपने क्यो लिखा ? कि 'हस' तो प्रगतिशील पत्र है, पर इस नाटक में प्रगतिशीलता कहाँ है ? "

हमें 'सराय फूस' ही पर उतर जाना था। अश्क जी ने सामने जाती हुई सड़क की ओर संकेत करते हुए कहा, "म वही सामने 'भैरो के मन्दिर' के पास रहता हूँ, २२ नम्बर के क्वार्टर मे। कभी अवकाश मिले तो आइएगा विस्तार से बाते करेगे।"

और हम उतर गए।

आज इतने वर्ष बीत जाने पर भी मुझे उस युवक की गोल गलगोथनी सरल आकृति, बड़ी बड़ी जिज्ञासापूर्ण आँखे और अपने आप को गम्भीर आलोचक सिद्ध करने की चेष्टा स्मरण हो आती है। 'चरवाहे' के नाटकों, उसके पात्रों और उसके सकेतों को लेकर ये जिज्ञासाएँ कई बार उठी हैं। यही कारण है कि जहाँ अश्क जी ने उर्दू में अपने चार नाटक-संग्रहों के सम्बन्ध मे किसी प्रकार के परिचय की आवश्यकता नही समझी, वहाँ उन्होंने 'चरवाहे' पर श्री मुख्तार

सिद्दीकी का लेख भूमिका के रूप में दिया। वह लेख मेरे सामने है। मैंने स्वय भी इन नाटकों को पढ़ा है और लिखे जाने की भिन्न मजिलो मे इन्हे देखा है। जहाँ श्री० मुख्तार सिद्दीकी ने इनमे वे बाते भी ढूँढी जो लिखते समय अश्क जी की कल्पना मे भी न थीं, वहाँ वे उन कई बातो से अनभिज्ञ भी रहे, जो इन नाटकों से गहरा सम्बन्ध रखती है। अश्क जी का विचार था कि जब ये नाटक हिन्दी मे छपेगे तो वे स्वय इन पर चन्द पक्तियाँ लिखेंगे पर वे तो कई महीनो से क्षय-ग्रस्त पडे है और यह काम मेरे जिम्मे आ पडा है। मैं, श्री० मुख्तार सिद्दीकी और दूसरे आलोचकों के लेखों तथा अपनी जिज्ञासा और अल्प बुद्धि के बल पर, इन नाटको तक पहुँचने के लिए, पाठको का मार्ग सुगम करने का भरसक प्रयास करूँगी। यदि तनिक भी सफल हुई तो अपना यह प्रयास सार्थक समझूँगी, नहीं आशा है सहृदय पाठक मुझे क्षमा करेंगे।

"चरवाहे" के नाटकों की शैली, इससे पहले और इसके बाद लिखे गए, छोटे अथवा बड़े, सभी नाटको से भिन्न है। इस सग्रह का प्रत्येक नाटक, जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, चाहे वह सामाजिक हो अथवा रोमेंटिक, दुखद हो अथवा सुखद, व्यग्य हो अथवा प्रहसन, विभिन्न सकेतों और प्रतीकों की सहायता से आगे बढ़ता है। इन्ही प्रकट अथवा प्रोक्ष प्रतीको अथवा सकेतों के पर्दे मे विषय-वस्तु का ताना बाना उलझता सुलझता रहता है। ये प्रतीक, जड़ हों अथवा जगम, प्रायः रगमंच पर आते हैं लेकिन कई बार प्रोक्ष ही मे रह कर नाटक पर भारी प्रभाव डालते हैं।

पहले नाटक 'चरवाहे' ही को लीजिए। इसमे केन्द्रीय पात्र स्त्री है

जो अपने मामा धनी राम के यहाँ पड़ी हुई है। शेष सारे पात्र—डाकू, गोविन्द, राजा उसी की पारद ऐसी प्रकृति के विभिन्न नन्हे नन्हे पलटे दिखाई देते हैं। नाटक इसी पात्र के इर्द गिर्द घूमता है। रत्नी अपने ही कथनानुसार—"रोज रोज का अपमान, ताने मेहने, व्यग्य उपहास, तन और मन की कैद सहन किए जा रही है" डाके की दुर्घटना और गोविन्द की वीरता और साहस उसकी—अन्तर से स्वतन्त्र किन्तु शरीर से वन्दिनी—आत्मा को झकझोर कर उड़ान के लिए प्रेरित कर देती है और फिर पृष्ठ भूमि मे कभी कभी उठने वाला वह चरवाहो का वर्षा और बादल ऐसा गीत—

म्हारा जंगल का सब साज सदा रहती है दूब हरी
सदा रहती है दूब हरी

उसकी सोई हुई स्वच्छन्द आत्मा को सजग कर देता है और एक ओर चरवाहों का गाना (रगमंच के बाहर सजीवता का प्रतीक) और दूसरी ओर कान्त (स्टेज के अन्दर—निर्जीवता का प्रतीक) उसके निश्चय को पक्का करते हैं। यही कान्त की तुलना मे रत्नी का चरित्र और भी उभरता है और उसकी मन से स्वच्छन्द पर तन से वन्दिनी आत्मा आतुर होकर पुकार उठती है।

"ओह ! कहीं मै इन चरवाहो की भाँति स्वतन्त्र—रोज रोज़ के तानों मेहनों कोसनो से स्वतन्त्र—इस परवशता और पराधीनता से मुक्त गाती नाचती घूम सकती !"

और वह अनायास अपनी वर्षों से दबी हुई आकाक्षाओं को, अपनी स्वच्छन्द आत्मा के विस्तृत आकाश मे उन्मुक्त छोड़ देती है। इस स्वच्छन्द आत्मा का एक प्रतिरूप गोविन्द है जो गाँव की विस्तीर्ण चरागाहों मे अपने ढोर डंगर चराता है और अवसर पड़ने

पर डाकुओं का सामना करने से भी नहीं डरता और दूसरा रूप चर-वाहों का वह गाना है जो नाटक मे बड़े कोमल स्थलों पर पृष्ठ-भूमि से उभर कर रंगमच पर छा जाता है।

रत्नी चली जाती है और कान्त अधिक से अधिक दो एक कटु वाक्य कस कर रह जाता है। ये वाक्य एक अनुभवी और युवा होते हुए भी प्रौढ़ मस्तिष्क की उपज तो हैं पर यौवन की तरुण नदी के बहाव को रोकने की सामर्थ्य इनमे नहीं के बराबर है।

इस प्रकार 'चरवाहे' मे यदि रत्नी उद्दड, अल्हड़, परिणाम से निश्चिन्त, उड़ने को, कर्म करने को आतुर यौवन की प्रतीक है तो कान्त उस प्रौढ़ जवानी का जिसने छोटी वयस ही मे जीवन की कटुताओं का रस पा लिया है और उनसे समझौता भी कर लिया है।

"नाटक की खूबी" जैसा कि प्रो० मुख्तार सिद्दीकी ने लिखा है, "यह है कि जहाँ जवानी के ये दोनों स्पष्ट प्रतिरूप हमारे सामने रंग-मंच पर आते हैं, वहाँ नाटक को गति प्रदान करने वाला स्वतन्त्र, चिन्ता रहित यौवन का निश्चयात्मक प्रतीक—चरवाहे—कहीं भी स्टेज पर नहीं आता। केवल उनका रस भरा गीत, पृष्ठ भूमि से उभर, क्षण भर के लिये सम्भाषणो मे थरथरा कर, विलुप्त हो जाता है और इतने ही मे नाटक को गति प्रदान कर देता है। हद यह है कि गोविन्द भी, जिस के अस्तित्व मे चरवाहो की स्वतन्त्रता और साह-सिकता मूर्तिमान हो गई है, सारे खेल मे कही रगमच पर नहीं आता।"

किन्तु "चिलमन" में ऐसा नहीं। सकेतों की बाड़ यहाँ दोहरी है! चिलमन—जिस के सूक्ष्म से प्रतीक पर लेखक ने यह अतीव करुण नाटक सृजा है—रगमंच के अन्दर अपने जड़ स्वरूप में भी विद्यमान है और स्टेज के बाहर, शशि के रूप मे, अपने चेतन स्वरूप मे भी।

इसी महीने यह नाटक गुजराती की प्रसिद्ध पत्रिका "रेखा" मे छपा है। इसे पढ़ कर गुजरात के प्रसिद्ध नाटककार तथा कवि श्री० उमाशकर जोशी ने इसके अनुवादक से कहा, "आ नाटक वेशक घनो सरस छे।" ………और सचमुच "चिलमन" अपने मे धीमे धीमे अनवरत जलते रहने वाले दुख-दीप की हल्की हल्की लेकिन अनश्वर जलन लिये हुए है। सारे खेल मे हरि और किरण के चरित्र इस सुन्दरता से उभारे गए हैं कि अवसाद भरे सम्भाषणो मे दोनो पति पत्नी सजीव हो उठे हैं।

पहली ही दृष्टि मे किरण का यो रुग्न दिखाई देना हृदय को अवसन्न सा कर देता है—रीढ़ की हड्डी के निरन्तर बहने वाले नासूर से पीड़ित रोगिनी—जो लेटे लेटे कंकाल मात्र रह गई है। हिलने से नासूर का प्लास्टर हट न जाए, इस विचार से डाक्टरो ने उसके पैरो मे ईंटे बाँधने का आदेश दे रखा है। रस्सियो से जकड़ी, हिलने जुलने में प्रायः असमर्थ, विवशता की प्रतिमूर्ति किरण वर्षों से चुपचाप पड़ी अगनित अरमानो के जाल बुने जा रही है। कहीं अर्धचेतन मे उसे मृत्यु के सामीप्य का आभास मिल गया है और प्रकाश के लिए, जागृति और जीवन के लिए उसकी छटपटाहट और भी बढ़ गई है।

—"उन से कह दो, वे इस कमरे मे बैठ कर ब्रिज खेले, मैं केवल देखूँगी।"

"मैं केवल देखूँगी"—इस छोटे से वाक्य मे कितनी विवशता, कितनी आकाक्षा निहित है। दूसरो को जीवित देख कर ही वह जीवन का आभास पा लेना चाहती है। और फिर मृत्यु के समीप पहुँच उसके वे अरमान और स्वप्न….. . वह अजीत गढ़ के मीनार पर चढना चाहती है …….मन्दिर के अन्दर जाना चाहती है …….

पहाड़ की चोटी को सर कर लेना चाहती है...... . चाँद की किरणों मे नहाना चाहती है........जीवन के लिए किरण की यह छटपटाहट लेखक ने ऐसे लाक्षणिक ढग पर, ऐसे सुन्दर शब्दों मे, रखी है कि इन स्थलो पर पहुँच कर सदैव मेरे जी को कुछ होने लगता है। किरण की इस छटपटाहट मे लेखक ने सभी मरने वालो के अरमानों को सँजो दिया है।

फिर वह हरि—उसका वह कवि पति—उसका चरित्र कितना भेद-भरा है। पर्दा उठते ही हम उसे किरण की सेवा मे तल्लीन पाते हैं। उसे किरण के कमरे मे प्रकाश तक पसन्द नहीं, साथ के कमरे मे कह-कहे तक पसन्द नहीं, शशि से, जो बनारस से केवल उसी के लिए आई है, मिलना तक पसन्द नहीं—एक आदर्श पति सा वह अपनी रोगिनी सहचरी की शुश्रूषा में तन्मय है, परन्तु मनोहर की ईर्षा उसकी इस पत्नी-भक्ति का भेद खोल कर रख देती है। और मनोहर के मुँह से यह सुन कर कि वह अपनी पत्नी की बीमारी से अपनी उन वेदनामयी कविताओं के लिए प्रेरणा प्राप्त करता है, जिनसे वह शशि को आकर्षित कर रहा है, हमे प्रबल आघात सा लगता है। सुन कर क्षण भर के लिए हम विपन्न से रह जाते है। क्या यह सत्य है? क्या ऐसा हो सकता है? किसी ने कहा है—"ईर्षा मनुष्य की आँखों को माइ-क्रोस्कोप की सी बारीकी प्रदान कर देती है"—मनोहर ने अपनी ईर्षा के सहारे जिस सत्य का पता पाया, वह कदाचित साधारण लोगो की दृष्टि से सदा ओझल रहता। मनोहर (और उसके द्वारा स्वयं नाटककार) अर्धचेतन की गहराइयो मे कितना डूब कर इस सत्य का पता पा सका है! हरि कदाचित स्वयं इस सत्य से भिज्ञ नहीं, किन्तु मनोहर की ईर्षा इस सूक्ष्म सत्य को स्थूल बनाकर हमारे समक्ष उपस्थित कर देती है

और मनोहर का अभियोग अकाट्य प्रतीत होता है। और फिर नाटक के अन्त में स्वयं हरि के वे शब्द :—

"वह नहीं आ सकती, वह कभी नहीं आ सकती। देखते नहीं मैंने चिलमन उतार दी है, मैंने चिलमन उतार कर फेंक दी है" ..... और हम जान जाते हैं कि मनोहर का यह अभियोग सत्य था और हरि ने अब पश्चाताप करने की ठान ली है। यह गिरगिट का गुण, यह अस्थिरता कितनी मानवीय है। अपनी एक कहानी "यह मनुष्य" में भी अश्क जी ने इस अस्थिरता का बहुत सुन्दर चित्रण किया है। और हरि का यह पश्चाताप स्थायी होगा, कौन कह सकता है ?

हरि और किरण के स्पष्ट चरित्रों की पृष्ठ भूमि में एक और अस्पष्ट सा पात्र है जो धीरे धीरे उभरता हुआ नाटक के समाप्त होते होते इन दोनों पात्रों पर छा जाता है। और खूबी यह है कि चरवाहों की तरह यह भी कभी रंग मंच पर नहीं आता। मिश्रीकी साहिब ने अपने लेख में हरि या किरण पर इतना जोर नहीं दिया जितना शशि पर। वे लिखते हैं :—

> शशि स्टेज पर नहीं आती किन्तु उसका रूप स्पष्ट सा होकर सामने आ जाता है। माँ, मनोहर और स्वयं हरि तथा किरण के वाक्य सुन कर हम उसे देखने से लगते हैं। चिलमन का रंग उसके स्वभाव का प्रतीक है और लगता है कि वह भी गहरे नीले टाट सी स्थूल बुद्धि रखने वाली, अपने मत को मान कर चलने वाली होगी कि हृदय उसका भावुक है और उसमें रेगिस्तान की बेटियों की सी वह ज्वाला है, कि इस बौद्धिक युग में भी हरि की दर्द भरी भावुक कविताएँ उसके हृदय में प्रेम की चिंगारी भड़का देती हैं और वह बनारस से उड़ी चली आती है।

यहाँ से हरि और किरण के केन्द्रीय चरित्र मन्द पड़ने लगते हैं और शशि का टूटते तारे का सा ज्योतिर्मय, किन्तु वेदना पूर्ण चरित्र मूर्त रूप होकर सामने आ जाता है। ज्यों ज्यों नाटक बढ़ता है, मेरी दृष्टि हरि और किरण के स्पष्ट चरित्रों पर नहीं जमती, बल्कि पृष्ठ भूमि की धुंधलाहटों में तीखे नक्श और मृग-शावक सी आँखों वाली शशि की अस्पष्ट रेखाएँ कहीं डूबती और कहीं उत-राती मुझे अपने में तन्मय कर लेती हैं। ऐसा लगता है कि अश्क की तूलिका ने हरि और किरण के स्पष्ट चरित्रों पर इतना परिश्रम नहीं किया, जितना शशि की धुंधली काया को रूप देने में, क्योंकि उसकी धुंधलाहटों में स्पष्टता और स्पष्टता में धुंधलाहट अतीव आवश्यक थी।

यहाँ मुझे जे० सी० डालमैन के प्रसिद्ध चित्र सेंट ऐंथनी की परीक्षा (Temptation of St Anthony) का ध्यान हो आता है। इस प्रख्यात चित्र के सम्बन्ध में टालस्टाय का विचार था कि इस चित्र की कला इतनी अश्लील और पोच है कि चित्रकार का ध्यान संत एन्थोनी पर इतना नहीं जितना उसकी पृष्ठ-भूमि में उभरते हुए अर्ध-नग्न नारी के धुंधले से खाके पर!

चित्र की अर्ध-नग्न मूर्तिमान मोहिनी नारी मुझे 'चिलमन' की शशि का प्रतिरूप दिखाई देती है। पहली दृष्टि में संत ऐन्थोनी की पवित्र मूर्ति, उसके सिर का देदीप्यमान मंडल हमारी आँखों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है—'चिलमन' में हरि और किरण के चित्र संत ऐन्थोनी ऐसे ही स्पष्ट और आकर्षक हैं—किन्तु जब हम संत ऐन्थोनी के चित्र से अपनी आँखें हटा कर शेष चित्र की ओर दृष्टि-निपात करते हैं तो पृष्ठ-भूमि के धुंधलकों में अर्ध नग्न

नारी की उभरती हुई रेखाएँ हमे अपने मे तन्मय कर लेती हैं। फिर सत ऐन्थोनी पर हमारी दृष्टि नही जमती। वास्तव चीज़ वही दिखाई देती है, क्योंकि वही तो मोहिनी है, वही तो सत की परीक्षा लेने वाली है, जिसे ध्यान मे रखकर चित्रकार ने चित्र सृजा, नही उसके बिना भी चित्र पूर्ण था। और उसका शीर्षक केवल "संत ऐन्थोनी" हो सकता था, पर चित्र का नाम तो "संत ऐन्थोनी की परीक्षा" है और मेरे विचार मे यही कारण है कि डालमैन ने उस धुधले से खाके पर इतना परिश्रम किया। यही हाल "चिलमन" मे शशि का है और शशि ही के कारण खेल का नाम "चिलमन" है, नही यदि शशि के चित्र और चिलमन के प्रतीक को अधिक धुधला कर दिया जाए तो डालमैन के चित्र की भाँति इस खेल का नाम भी "हरि की व्यथा" अथवा "जीवन की आकाक्षा" अथवा "किरण" हो सकता था!

लेकिन शशि ही तो वह गहरा नीला टाट है, जो किरण के जीवन और और उसकी ज्योति के मध्य लटक रहा है। उसी के कारण मरते मरते किरण की ईर्षा और ईर्षा से उत्पन्न होने वाली जीवित रहने की तड़फड़ाहट करुण हो उठती है। चिलमन का यह प्रतीक अत मे हरि के एक वाक्य से बिलकुल प्रकट हो जाता है।

"वह नहीं आ सकती, वह कभी नहीं आ सकती। देखते नही मैंने चिलमन उतार दी है। मैंने चिलमन उतार कर फेक दी है!"

'चमत्कार' में संकेतों की बाड तेहरी हो गई है। सकेत कुछ अस्पष्ट हैं पर तनिक ध्यान देने पर साफ समझ मे आ जाते हैं। मृत-मीन भ्रष्ट

जीवन का, गढ़वाली गोलियाँ (जो एक पहुँचे हुए संत ने प्रदान की है) साधारण लोगों के विश्वास का और श्वेत डाढ़ी वाला, सर्व-वेत्ता लेखक का प्रतीक है। अश्क जी के डाढ़ी नहीं, किन्तु जब भी मैं यह नाटक पढ़ती हूँ, मुझे यही लगता है कि नाटक के अंत में लम्बी सी श्वेत डाढ़ी बढ़ाए उन्हीं का वृद्ध स्वरूप व्यंग्य से मुस्करा कर कहता है।

"विश्वास उत्पन्न करने की आवश्यकता है, चमत्कार क्या आज नहीं हो सकते।"

कला और विषय-वस्तु की दृष्टि से "चमत्कार" अतीव सफल नाटक है। श्रीमती मुमताज शीरीं ने "नया दौर" (बंगलोर) मे इसे 'अश्क का चमत्कार' कहा है। प्रकट प्रहसन की वेशभूषा धारण किए हुए वास्तव मे यह नाटक कितनी गम्भीरता से हमारे धार्मिक विश्वासों पर व्यंग्य का नश्तर लगाता है, इसे नाटक को ध्यान से पढ़ने पर ही जाना जा सकता है।

पहली बात जो नाटक पढ़ने पर प्रकट होती है, वह धर्म मे साधारण लोगों की दिलचस्पी की यथार्थता है। लोगों की दिलचस्पी धर्म में कितनी ऊपरी है—धर्म के गहन विषय पर तर्क-वितर्क को वे जिस ध्यान से सुन रहे है और जिस प्रकार बढ़ बढ़ कर उसमे योग दे रहे हैं, उसी ध्यान से वे बटी वाले की लच्छेदार बाते सुनने लगते हैं। बिलकुल उसी प्रकार जैसे गाड़ी के डिब्बे मे, ट्राम मे, वाटिका मे अथवा किसी ऐसे ही जन सकुल स्थान मे कई बुजुर्ग बड़े जोरो से माला फेरते फेरते पास ही होने वाली राजनीतिक या सामाजिक बात चीत में योग देने लगते है।

और फिर दूसरे यह कि जब लोग धार्मिक समस्या पर वाद-विवाद करते करते गढवाली गोलियों के चमत्कार से प्रभावित हो जाते है, तो वास्तव मे चमत्कार वह पवित्र गाथा नहीं रह जाती कि यीसू मसीह ने

एक तरुणी को छुआ तो वह उठ खड़ी हुई, वरन् यह कि किस प्रकार एक बाजारी वैद्य (Quack) देखते देखते लोगों की गाढ़े पसीने की कमाई छीन कर ले जाता है।

फिर यदि हम मान लें (और नाटक में यह मान लेने के लिए सकेत है) कि धटी वाले और तुर्की टोपी वाले ने पहले से गिन-मिथ कर वह षड्यन्त्र रचा था, तो देखते देखते लोगों के इस प्रकार उल्लू बनने पर और भी हँसी आती है और क्षण भर के लिए विचार हो आता है कि घटी वाले ही की भाँति कितने Quack हमारी जनता के इस विश्वास का लाभ उठा कर उसे ठग न रहे होंगे!

इसके अतिरिक्त यह नाटक चौथा और सब से महत्व पूर्ण जो प्रश्न, हमारे सम्मुख अपने तीव्र व्यग्य से उपस्थित करता है, वह यह है कि वे चमत्कार जो जनता ने अपने महापुरुषों के प्रति स्थिर कर रखे हैं, क्या वास्तव में जनता के विश्वास ही का फल तो नहीं!

"चमत्कार" के गुणों को मैं कदाचित ठीक ठीक प्रकट नहीं कर सकी। मेरी दशा गूँगे के गुड़ की सी है। "चमत्कार" को पढ़ कर, इसके प्रकट और प्रोच्छ सकेतों को समझ कर, जो रस मिलता है, उसे वाणी में व्यक्त करना कम से कम मेरे लिए कठिन है। मैंने नाटक की गहराई तक पहुँचने के लिए सीधे साधे ढग पर रास्ता सुझा दिया है।

"मैमूना" बड़ी दर्द भरी झाकी है। यही बात, कि सारे का सारा खेल कद्रों (Values) और अन्दाजो (Calculations) की गलती पर निर्भर है, विषय को बड़ा दुखद बना देती है। फिर इस खेल में एक भोली भाली निरीह बालिका की भटकी हुई, विवश, निराश्रित आत्मा की कल्पना इसमें और भी व्यथा भर देती है।

मैमूना (बच्ची) आमना (माँ) के पहले पति स्व० साजिद की जीती जागती निशानी है। क्योंकि साजिद से, उनके जीवन काल ही मे आमना घृणा करने लगी थी, इस लिए मैमूना की शक्ल ही से उसे चिढ़ हो गई है। मैमूना एक सीधी साधी बालिका है जिसमे माँ के इस दुर्व्यवहार ने अभी तक किसी प्रकार की जटिलता (Complex) उत्पन्न नहीं की (वह उस वयस में है जहाँ से मन मे जटिलताएँ उत्पन्न होने लगती हैं) आमना का वर्तमान पति अरशद एक प्रकार से मैमूना ही का प्रौढ़-प्रतीक (Adult Symbol) है, क्योंकि आमना, जो साजिद के समय मे अरशद स प्रेम करती थी, अब उसकी निर्धनता और बेपरवाही से ऊब कर अपने देवर माजिद से प्यार करने लगी है। साजिद के समय मे आमना साजिद की बेटी मैमूना को प्यार से "अरशद चचा की बेटी" कहा करती थी और अब अरशद के बेटे फ़रीद को "माजिद चचा का बेटा" कहती है।

सिद्दीकी साहिब ने इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित व्याख्या की है:—

"आमना अरशद से विवाह करना चाहती थी, पर साजिद की सम्पन्नता के कारण उसने उनसे विवाह किया, किन्तु वह अरशद की चाह न छोड़ सकी और जब वह एक बच्ची की माँ हुई तो उसकी अपराधी आत्मा को साजिद से किसी प्रकार का मानसिक अथवा शारीरिक नाता असह्य हो गया। अपने प्रेमी अरशद से बेवफाई को, अपनी अपराधी आत्मा की तुष्टि के लिए, उसने कुछ इस प्रकार की युक्ति से उचित समझ लिया :—

—साजिद कुरूप और मूर्ख हैं, पर मैं भी क्या करती, अरशद तो विपन्न थे और साजिद सम्पन्न। उन्हे स्वीकार करना ही पड़ा।

—पर यह क्या जानती थी कि साजिद की सहचरी होकर मैं उनकी एक बेटी की माँ भी कहलाऊँगी !

—तौबा यह लड़की......साजिद की बेटी है......तौबा !

—बच्ची अच्छी है, और मेरी भी तो है, लेकिन साजिद... .. साजिद इसके पिता हैं........ ...यह कल्पना ही असह्य है......!

—अरशद अब भी मेरी कल्पना के देवता है।

—ओह !...... . लेकिन मैमूना......काश साजिद की यह बेटी, अरशद की बेटी कहलाती !

—अच्छा तो क्या हुआ ? मम्मो अरशद की बेटी होगी—मैं उसमें उन्हीं का प्रतिबिम्ब देखूँगी।

—क्यों मम्मो, तू अरशद की बेटी है न ? अपने अरशद चचा की बेटी !

उस के भाग्य से साजिद मर जाते है और वह तत्काल उस भूल का सुधार कर लेती है और यद्यपि उसका देवर माजिद उससे प्यार करता है, पर उसे छोड़ कर वह अपने पहले प्रेमी अरशद से विवाह कर लेती है। किन्तु धन-वैभव और उससे सम्बन्ध रखने वाले शिष्टाचार उसकी नस नस मे रच चुके हैं। अरशद की असभ्य विपन्नता उसकी आँखो मे खटकने लगती है—यहाँ तक कि उसे फिर वही सम्पन्नता और उसका सौन्दर्य याद आने लगता है। अरशद उसे गन्दा गरीब और असभ्य लगता है। धीरे धीरे वह उससे घृणा करने लगती है, अपनी प्रेम-नदी की धारा माजिद की ओर मोड़ देती है और अरशद का प्रतिरूप मैमूना उसकी आँखो से उतर जाती है। वह कुछ उसी तरह की युक्ति

में अरशद के बेटे फरीद को साजिद चचा का बेटा कहने लगती है और अरशद मैमूना ही की भाँति उपेक्षित, निराश्रित और आमना के प्रेम-संसार से निर्वासित रह जाता है।"

आमना के मनोविज्ञान की यह व्याख्या सिद्दीकी साहिब ने बहुत सुन्दर की है। पर वे यह मान कर चले हैं कि मैमूना साजिद की बेटी और फरीद अरशद का बेटा है, किन्तु ऐसा भी तो हो सकता है कि मैमूना सचमुच अरशद की बेटी और फरीद साजिद का बेटा हो। और इस बात को मानने के लिए, कि आमना अपने दोनों पतियों से बेवफ़ाई करती रही है, खेल में काफी संकेत है।

साजिद से विवाह करके भी आमना अरशद की मुहब्बत का दम भरती है........अरशद उसके घर आता रहता है..... ...साजिद उसके आने पर आपत्ति नहीं करते...जब साजिद घर होते हैं, आमना या सोती है या सैर को चली जाती है और जब वे घर नहीं होते (यद्यपि खेल में इसका जिक्र नहीं किया गया) तो वह अरशद के साथ रहती है......। और खेल के अन्त में अरशद की दुखी आत्मा पुकार कर मम्मो से कह उठती है।

—"तू मेरी बेटी है, खैरिन की नहीं, साजिद की नहीं, आमना की भी नहीं, तू अपने अब्बी की बेटी है!"

यही कुछ हम साजिद से आमना के सम्बन्ध और फरीद के साजिद का बेटा होने के बारे में कह सकते हैं। आमना अरशद से भी उसी प्रकार विश्वासघात करती है। इसके संकेत नाटक में वर्तमान हैं। इस दृष्टि से देखने पर नाटक और भी दुखद हो जाता है। साजिद और अरशद हमें एक से दुखी प्रतीत होते हैं और साजिद और उनके बाद अरशद की महानता, उदार हृदयता, धीमे धीमे

अपने प्रेम की आग मे जलना अनायास ही हमारा मन मोह लेता है। और न केवल अरशद, वरन् साजिद भी मैमूना के प्रौढ़ प्रतिरूप बन जाते हैं—यहाँ यह बात देखने योग्य है कि आमना से निराश होकर दोनों अपने प्रेम को मैमूना पर केन्द्रित कर देते हैं, जो उन्हीं की भाँति प्रेम की भूखी है।

रही आमना तो वह सारे पात्रों पर छाई हुई है। उसका चरित्र बड़ा सबल और शक्ति-सम्पन्न है। उसका दोष सिद्दीकी साहिब की दृष्टि में यह है कि वह अपनी गणनाओं (calculations) मे ग़लती और फिर गलती करती है और इसी लिए उन्हे उससे सहानुभूति होने लगती है, किन्तु मुझे उसके प्रति किसी प्रकार की सहानुभूति नहीं। वह साजिद को न चाहती थी तो उसने उन्हे छोड़ा क्यों नही? वह अरशद को न चाहती थी तो उसनें उसे स्पष्ट रूप मे यह बताया क्यो नही? उससे सम्बन्ध विच्छेद क्यों नहीं किया? वह दोहरा जीवन (Double life) क्यों व्यतीत करती रही? और यदि सचमुच साजिद और अरशद से, उनसे विवाह करने पर भी (मेरी दूसरी व्याख्या के अनुसार) वह शारीरिक विश्वासघात करती रही है, तो वह मेरी सहानुभूति की पात्र नही, क्योंकि मैं उसकी अस्थिरता को असयम और स्वमताभिमान का नाम देती हूँ। स्वय अश्क जी का क्या मत है, मैं पूरे तौर पर नही कह सकती। मैंने उनसे पूछा तो उन्होंने कहा—मेरी दृष्टि आमना पर न थी, मेरे सामने मैमूना और उसके बाद अरशद और साजिद ही रहे"—लेकिन उनके इस कथन के बावजूद आमना सब से अधिक महत्त्व प्राप्त कर लेती है। साजिद, अरशद और मैमूना के साथ साथ उसकी अपनी ट्रेजेडी भी तो कम नही—एक मानिनी नारी जो अपने अस्थिर चित्त के कारण भूल पर भूल करती

चली जाती है और कहीं शान्ति नहीं पाती—और कदाचित् इसी लिए खेल में कुछ ऐसी बात भी आ गई हो जिससे उसके प्रति किसी किसी के मन में सहानुभूति का आविर्भाव हो जाता हो।

"चुम्बक", "सूखी डाली" और "खिड़की" मे किसी प्रकार की उलझन नहीं। "चुम्बक" मे लोह-चून के दो कणों, "सूखी डाली" मे वट और सूखी डाली और "खिड़की" में प्रतीक्षा करने वाले प्रेमी और खुली खिड़की के संकेत और प्रतीक सुस्पष्ट हैं।

सिद्दीकी साहिब ने "चुम्बक" को यह कह कर छोड़ दिया है कि उन्हे संग्रह के नाटको मे यह सब से अधिक पसन्द है! उन्हे गौतम की उस प्रतिमा से ईर्षा है जिसके व्यक्तित्व का चुम्बक लोह-चून के दो कणो को अपनी ओर खींचने में समर्थ होता है। स्वय अश्क जी को सरिता का चरित्र पसन्द है क्योंकि उसी की रूमानी कल्पना (Romantic-Imagination) का झूठ प्रमाणित करने के लिए उन्होंने यह नाटक सृजा। और उन्होंने उसे सचमुच की सरिता बनाने मे—जो पाषाणों और चट्टानों को फलागती हुई, सागर से मिलने को बढ़ी चली जाती है—कोई कसर नहीं उठा रखी। किन्तु मुझे गोपा पसन्द है। सिद्दीकी साहिब के विचार मे यह ट्रैजेडी गौतम की है, अश्क जी इसे सरिता की ट्रैजेडी समझते हैं, किन्तु मेरे विचार मे यह ट्रैजेडी गोपा की और केवल गोपा की है। गौतम कदाचित गोपा से निराश होकर लोह-चून के किसी और कण को अपनी ओर खींच लेगा, कदाजित सरिता ही के अनुभवहीन यौवन को अपनी बातों मे फँसाए रखेगा, कदाचित सरिता भी अपने हठ से गौतम को जीत लेगी पर गोपा जिसका प्रेम सरिता की तरह तूफानी नहीं सागर की भाँति गम्भीर है, जो भावुक नहीं, बुद्धिवादी है, जो "आदि मार्ग" की 'रानो' की भाँति अपना

अपमान करने वाले को, उससे प्रेम करने पर भी, छोड सकती है।—उसकी निराशा शब्दों मे अंकित नहीं की जा सकती। मुझे 'जवाब' फिल्म में जमुना का चरित्र याद आ जाता है 'जवाब' चाहे चुम्बक के बहुत दिनो बाद बनी,' पर जब मैंने 'जवाब' में जमुना को देखा तो मुझे ऐसा लगा जैसे चुम्बक ही की गोपा मूर्तिमान होकर मेरे सामने आ गई है। अपने प्रेमी को, प्रेम करने के बावजूद, छोड़ देने की जो विवशता 'जवाब' में जमुना की है, वही चुम्बक मे गोपा की है। यद्यपि नाटककार ने यह नहीं लिखा कि वह गौतम को छोड़ देती है पर उसकी व्यग्यमयी मुस्कान से पता चल जाता है कि अब यदि गौतम उसके चरणों में गिर कर गिडगिड़ाएगा तो भी वह उसे स्वीकार न करेगी।

"सूखी डाली" यद्यपि दुखात नहीं, सुखात एकाकी है, पर अन्त मे जहाँ बेला इन्दु के साथ बातें करती है और स्वयं कपड़े धोने को चल देती है और दादा से कहती है—"दादा जी, आप किसी डाली का पेड़ से टूट कर अलग होना पसन्द नहीं करते, पर क्या आप यह पसन्द करेंगे कि पेड़ से लगी लगी वह डाली सूख कर मुरझा जाए!" वहाँ कठ अनायास भर आता है। वास्तव में यहीं अश्क जी ने व्यग्य का नश्तर पूरे जोर से हमारी कौटुम्बिक प्रणाली पर लगाया है।

यहाँ तक तो थी नाटको की साकेतिक व्याख्या, किन्तु इन संकेतों और प्रतीकों के अतिरिक्त यदि नाटकों की आधार-भूत भावनाओं और धारणाओं का विश्लेषण किया जाए तो पाठकों को इनकी विभिन्नता मे एकरसता और एकरसता में विभिन्नता मिलेगी। कदाचित यही कारण हैं कि अश्क जी ने इन नाटकों को एक संग्रह मे सकलित किया है। "चरवाहे", "चिलमन" और "चुम्बक" में एक एक पात्र कवि है

किन्तु इन तीनों कवियों की प्रकृति एक दूसरे से भिन्न है—'चरवाहे', का कवि कान्त कल्पना लोक का वासी है। यह ठीक है कि जीवन के अनुभवो ने उसकी आँखें खोल दी हैं और वह ससार की यथार्थता से पूर्णतया अभिज्ञ हो गया है, किन्तु वह केवल कल्पनाओ के ढोर डगर चराता है। उसमे क्रियाशीलता का अभाव है। वह परतन्त्र और अकर्मण्य है और क्योंकि नाटक की आधार-भूत भावना स्वच्छन्दता और क्रियाशीलता है, इसलिए कान्त का चरित्र हमे अत्यधिक निर्जीव कवि का सा लगता है, जो युवावस्था ही मे प्रौढ़ हो गया है, जो शायद स्त्री से प्रेम करता है, किन्तु उसमें गोविन्द अथवा राजा का सा साहस नहीं; जो जीते जी राख हो गया है—ऐसी राख

न जो गरमाय
न गर्मी पाय
पड़े अगर अंगारा उसमें
तो बुझ जाय।

किन्तु "चिलमन" और "चुम्बक" का कवि ऐसा चतुर कवि है जो मकड़ी की भाँति अपने जाल बुने जाता है और उसके जालो में फँसने वाली रंगीन तितलियाँ अपनी झलकियों से नाटक का निर्माण करती हैं। ये तीनो कवि पात्र एक दूसरे से भिन्न दिखाई देते है पर यदि ध्यान से देखा जाए तो ये एक ही स्वभाव के तीन पलटे दिखाई देते हैं। यहाँ पहुँच कर यह प्रश्न उठता है कि अश्क जी की अपनी प्रकृति नाटको के उन कवि पात्रों की आधार-भूत प्रकृति से कहाँ तक मेल खाती है? लगता है जैसे तीन भिन्न रंगों मे उन्होने अपने व्यक्तित्व का कुछ न कुछ अंश छोड़ा है। नही तो एक दो, छोड़ तीन तीन नाटकों में कवि पात्र रखने अथवा ऐसा कथानक सृजन करने की

क्या आवश्यकता थी, जिसमें नाटक का ताना वाना कवि के फैलाए हुए सुनहरी जाल की छाया हो। मैं इस विषय पर बहुत कुछ लिख सकती हूँ पर इस प्रश्न का उत्तर एक दूसरे लेख और अश्क जी की दूसरी कृतियों के गहरे अध्ययन की अपेक्षा रखता है और इस लेख के विषय के बाहर की वस्तु है।

यह एकरसता में विभिन्नता और विभिन्नता मे एकरसता पुरुष पात्रों तक ही सीमित नहीं, नारी पात्रो मे भी इसका दिग्दर्शन होता है—रत्नी, शशि और सरिता एक ही रागिनी की ताने दिखाई देती हैं। मुझे अश्क जी की वही कविता याद आ जाती है जिसकी कुछ पंक्तियाँ मैंने ऊपर उद्धरित की हैं। कवि एक तरुणी से मिलता है, वह उसकी चाल मे तरुण नदी का प्रवाह और चिंगारी का सा जगता जीवन देखता है। अन्तिम चरण मे वह कहता है :—

> हम मिले
> मुझे मालूम हुआ
> तुम चिड़िया हो
> चल पख तुम्हारे आतुर
> उड़ने को आकाशों की गहराई में
> कल कठ तुम्हारा बेकल
> गाने को जीवन के मादक गाने
> अनजाने
> मडल मे जाने को
> हृदय तुम्हारा विह्वल !

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि रत्नी इसी कविता की वह यौवन माती

चिड़िया है जिसमे जीवन और यौवन इस हद तक तड़प रहा है कि वह अनजाने, अनदेखे मडलों मे उड़ जाने को आतुर है।

"चुम्बक" की सरिता—इसी कविता की तरुण तूफानी नदी है जो गौतम के दुख भरे गीतो से, अपनी ही रूमानी कल्पना (Romantic Imagination) से उसका पीड़ातुर चित्र बनाती हुई, पाषाणों और चट्टानो की बाधाओं को बहाती-मिन्टगुमरी से चली आती है। "चिलमन' की शशि सरिता ही का दूसरा रूप है। किन्तु इस एक रसता के बावजूद रत्नी सरिता और शशि भिन्न हैं।

जिन पाठको ने अश्क जी का नाटक "पापी" पढा है, उन्हे "पापी" और "चिलमन" के कथानक मे एक हल्की सी समानता अवश्य दिखाई देगी।

—* "पापी" की छाया यक्ष्मा से पीड़ित है।

"चिलमन" की किरण भी यक्ष्मा के दूसरे (और भी प्रबल) रूप में ग्रसित है।

—* "पापी" का शान्तिलाल अपनी पत्नी से विश्वासघात करता है।

"चिलमन" का हरि भी अपनी पत्नी से विश्वासघात करता है।

—*"पापी" मे छाया अन्त मे मर जाती है और इस मरने मे शान्तिलाल के विश्वासघात का भी हाथ है।

"चिलमन" मे किरण मर जाती है (और यद्यपि प्रकट दिखाई नहीं देता) पर पूरे ध्यान से नाटक को पढ़ने पर पता चल जाता है कि हरि का शशि को खींच बुलाना ही उसकी मृत्यु का तात्कालिक (Immidiate) कारण है।

किन्तु "पापी" से "चिलमन" तक अश्क जी की कला कितनी सुन्दर हो गई है, इसे दोनों नाटकों को एक साथ पढ़ने पर ही जाना जा सकता है।

उर्दू में अश्क जी के प्रकाशक ने "चरवाहे" के चन्द नाटकों के बारे में लिखा था कि ये योरूप की किसी भी भाषा के सुन्दर तम नाटकों के साथ रखे जा सकते हैं। हीन-भाव से पीड़ित कतिपय आलोचकों को यह बुरा लगा। "अदबी दुनिया" और "नया अदब" जैसी चोटी की पत्रिकाओं में भी जो आलोचनाएँ निकलीं, उनमें जहाँ नाटकों की प्रशंसा की गई, वहाँ यह कहा गया कि भारत में 'बर्नार्डशा' और 'इब्सन' के पैदा होने में देर है। क्योंकि हिन्दी में भी ऐसे छिद्रान्वेशी आलोचकों की कमी नहीं जो प्रसिद्ध रूसी गल्पकार चैखोव के कथनानुसार—"गऊ मक्खी की भाँति काट कर ही अपनी सत्ता सिद्ध करते हैं—" इसलिए हो सकता है हिन्दी का कोई आलोचक भी ऐसी ही बात कहे। ऐसे महानुभावों की सेवा में मैं इतना निवेदन करना चाहती हूँ कि इन नाटकों को पढ़ते समय वे 'शा' और 'इब्सन' को ध्यान में न रखें, क्योंकि उन दोनों ने कभी एकाकी नहीं लिखे। अश्क जी ने चाहे बड़े नाटक भी लिखे हैं पर इस संग्रह में वे एकाकी नाटककार के रूप में आते हैं और 'शा' अथवा 'इब्सन' से उन की तुलना करना अन्याय है। हाँ यदि योरूप के एकाकी नाटकों के साथ इन को रखा जाएगा तो इस संग्रह ही के नहीं, वरन अश्क जी के दूसरे संग्रहों से भी कई नाटक योरूप की किसी भी भाषा के सुन्दर एकांकियों के साथ रखे जा सकेंगे।

आलोचकों की बात चली तो अश्क जी के हिन्दी नाटकों "छटा बेटा", "स्वर्ग की झलक" और "देवताओं की छाया में" की हिन्दी

आलोचनाओं की याद आ गई। ये पंक्तियाँ लिखते समय मैंने उन आलोचनाओं को फिर ध्यान से पढ़ा है और मैं देखती हूँ कि अच्छे-अच्छे ख्याति प्राप्त आलोचकों ने भी कुछ निरर्थक आपत्तियाँ की हैं।

एक आपत्ति जो आलोचक नाटकों पर करते हैं, यह है कि वे सुगमता से रंगमंच पर खेले नहीं जा सकते। अपनी इस अमूल्य सूझ के प्रमाण में वे उस भूमिका का उल्लेख करते हैं जो अश्क जी के कतिपय नाटकों से पहले कहानी के से रूप में विद्यमान है। (पुराने नाटकों में "छटा बेटा" और "स्वर्ग की झलक" तथा वर्तमान संग्रह में "चुम्बक" और "सूखी डाली" के पहले ऐसी भूमिका है) और प्रश्न उठाते हैं कि यह सब किस प्रकार स्टेज पर उपस्थित किया जा सकता है।

दूसरी आपत्ति जो मुझे इन आलोचनाओं में मिली वह रंगमंच के प्रसाधन अथवा उसकी बनावट के सम्बन्ध में है।

एक आलोचक ने कुछ प्रवेशों और प्रस्थानों पर आपत्ति की है कि वे अकारण अथवा अनावश्यक हैं।

ऐसे छिद्रान्वेशी आलोचकों की दृष्टि कदाचित नाटक की नाटकीयता, पात्रों के चरित्र चित्रण, कथा-वस्तु के सौन्दर्य, सम्भाषणों के प्रवाह, व्यंग्य की तीव्रता या यथार्थ अथवा आदर्श के चित्रण को न देख कर, अपनी आलोचना-शक्ति की तीव्रता के प्रमाण में ऐसे छिद्र ढूँढा करती है।

ऐसे महानुभावों की सेवा में मैं यहाँ एक दो बातें लिख देना चाहती हूँ।

पहली तो यह कि यद्यपि नाटक रंगमंच की वस्तु है और अश्क जी प्रायः रंगमंच के लिए लिखते हैं, और रंगमंच का व्यक्तिगत अनुभव उन्हें

हमारे अधिकांश आलोचकों से कहीं अधिक है, किन्तु भारत में रंगमंच का अभाव होने के कारण, वे भावी दर्शकों की अपेक्षा अपने वर्तमान पाठकों का अधिक ध्यान रखते हैं, और रंगमच के निर्देशन को लक्ष्य में रख कर दिए जाने वाले आदेश शुष्क और नीरस न हो जाएँ, इस विचार से उन्हे मनोरंजक बना देते हैं। यही कारण है कि प्रायः अश्क जी के एकाकी कहानियो जैसे मनोरंजक बन जाते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसी भूमिकाओं अथवा निर्देशों में कभी कभी जो उपमाएँ अथवा अलंकार मिलते हैं, वे स्टेज पर दिखाने के लिए नहीं, वरन पाठकों के मनोरंजनार्थ होते हैं। प्रसिद्ध अंग्रेजी नाटककार जे० एम० बैरी के नाटक जिन पाठकों ने पढ़े हैं—और जे० एम० बैरी स्टेज क्राफ्ट (Stage craft) में निपुण माने जाते हैं—उन्होंने देखा होगा कि बैरी जब भी अपने नाटकों को पुस्तकाकार म प्रस्तुत करते हैं, सदा इन आदेशों मे नमक मिर्च लगा देते हैं। योरूप के कतिपय अन्य नाटककार भी इस प्रणाली का अनुसरण करते हैं।

पाठकों की दिलचस्पी के अतिरिक्त इससे एक लाभ यह भी होता है कि निर्देशक को पात्रों और कथा-वस्तु का पूरा पूरा पता चल जाता है और वह समझ जाता है कि नाटककार उस से किस प्रभाव और किस चरित्र-चित्रण की आशा रखता है। हाल ही मे अश्क जी का एक नया एकाकी "तूफान से पहले" इपटा (I P T A) बम्बई की ओर से खेला गया। नाटक के पहले तीन साढ़े तीन पृष्ठ की भूमिका है। प्रकट है कि निर्देशक ने उसे पढ कर नाटक और उसके स्थान और पात्रों के चरित्र को समझ लिया और उस पर लाल पेंसल फेर कर नाटक का निर्देशन आरम्भ कर दिया।

दूसरी बात जो विद्वान् आलोचकों को स्मरण रखनी चाहिए, वह यह है कि जब कोई नाटक (जो खेलने के पश्चात् पुस्तक रूप में न आया हो, वरन् पुस्तक रूप मे आने के पश्चात् खेला जाए) रगमंच पर प्रस्तुत किया जाता है, तो उस में कुछ परिवर्तन अनिवार्य हो जाते हैं। कई 'प्रवेश' अथवा 'प्रस्थान' बदलने पड़ते हैं और कई बार एक दो नये बनाने पड़ते हैं। कई बार सम्भाषण तक लम्बे अथवा छोटे करने पडते हैं। यही बात दूसरे निर्देशों के सम्बन्ध मे भी कही जा सकती है।

तीसरी बात यह है कि पाठकों के लिए जो नाटक प्रस्तुत किए जाते हैं, उनमे ऐक्शन के निर्देश कम रहते हैं। यह ऐक्शन जहाँ रगमच पर सम्भाषणों के प्रभाव को द्विगुन करता है, वहाँ लेखनी मे सम्भाषणों के प्रवाह को रोकता है। निपुण निर्देशक से यह आशा की जाती है कि वह निर्देशन के सकेत सम्भाषणों के मध्य स्वयं दे लेगा। किसी लम्बे सम्भाषण के मध्य कोई पात्र क्या करता है, कहाँ बैठता उठता अथवा घूमता है, इस का निर्देशन वह स्वयं देगा। अश्क जी कई बार इस ऐक्शन का संकेत भर कर देते है और कई बार यह काम रगमंच के निर्देशक के सामर्थ्य (Resourcefulness) पर छोड़ देते हैं। "तूफान से पहले" जब स्टेज के लिए प्रस्तुत किया गया तो अश्क जी ने स्वय उस मे ऐक्शन के अनुसार कई परिवर्तन किए, किन्तु जब नाटक छपा तो एक दो महत्वपूर्ण सम्भाषणो के अतिरिक्त उन्होंने नाटक मे कोई परिवर्तन नहीं किया। पूछने पर उन्होंने कहा कि इस सब ऐक्शन का उल्लेख पाठकों का ध्यान बटा देता है, वे इन्हे पढ़ते हुए उकता जाते हैं।

अन्त में प्रस्तुत सग्रह के एकांकियो की नाटकीयता के सम्बन्ध मे

(जहाँ तक इनका सम्बन्ध स्टेज से है) कुछ शब्द कहना चाहती हूँ। एक प्रसिद्ध उर्दू आलोचक का मत है कि जहाँ अश्क जी के पहले नाटक रंगमच के उपयुक्त है, वहाँ ये नाटक कदाचित रंगमच की अपेक्षा रेडियो पर अधिक सफलता से खेले जा सकते हैं।

इस मे कोई सदेह नही कि इस सग्रह के कतिपय नाटक बड़ी सफलता से रेडियो स्टेशनो से ब्राड कास्ट हुए है और हो रहे हैं, किन्तु यही बात अश्क जी के पहले नाटकों के सम्बन्ध मे कही जा सकती है जो उन्होने रेडियो के आगमन से कुछ समय पहले ही लिखे थे। "पापी" और "लक्ष्मी का स्वागत" स्टेज पर जिनकी सफलता के सम्बन्ध मे दो मत नही, पिछले आठ दस वर्षों में आल इडिया रेडियो के विभिन्न स्टेशनो से लगभग चालीस पचास बार ब्राडकास्ट हो चुके हैं। अश्क जी नाटक प्राय. स्टेज के लिए लिखते रहे है। हॉ, जब जब आवश्यकता पड़ी तो उनके रेडियो वर्शन (Radio Version) भी तैयार करते रहे हैं। उन महानुभाव ने जो पहले नाटको की अपेक्षा इन पर यह आपत्ति की तो कदाचित इसलिए कि इन नाटको में कई स्थलो पर द्वन्द्व (Conflict) स्थूल न होकर सूक्ष्म हो गया है; सकेत सकेत में मानव-मन की गहन गुफाओं मे छिपी हुई भावनाओं को उद्भासित किया गया है, एकाकी के नये नये प्रयोग इस सग्रह के नाटकों में किए गए हैं और कहीं कही सम्भाषण—जैसा कि 'चिलमन' मे—सरगोशी की सीमा को पहुँच गए है।

जिन पाठकों ने इपटा (I. P. T. A.) की सास्कृतिक टोली (Cultural squad) के रहस्य (Ballet) देखे हैं वे भलीभॉति जानते हैं कि 'चरवाहे' और 'चिलमन' जैसे नाटक किस प्रकार स्टेज किए जा सकते है और किस प्रकार रुग्ना किरण का सरगोशी का सा

मद्धम स्वर हाल की पिछली बेंचों पर बैठे हुए दर्शकों तक पहुँचाया जा सकता है। औषधियों की तिपाई के नीचे रखा हुआ छोटा सा माइक्रोफोन यह काम भलीभाँति परिपूर्ण कर सकता है। यही बात दूसरे कमरे अथवा रंगमच के बाहर से आने वाली आवाजों के सम्बन्ध में कही जा सकती है। इसके अतिरिक्त प्रकाश अथवा छाया (Light or shade) और बैकग्राउंड संगीत किस प्रकार सम्भाषणों को उभारने का काम देते हैं, इसे वे ही लोग जान सकते हैं जिन्हे आधुनिक रंगमंच का अनुभव है। इसके लिए हमारे उन 'विद्वान' आलोचकों की 'अपूर्व सूझ' के बदले श्री० बलराज साहनी के से सफल निर्देशन की आवश्यकता है।

"चरवाहे" के नाटक त्रुटियों से सर्वथा मुक्त हैं, मैं ऐसा नहीं कहती। मैंने इन नाटकों के गुणों का विवेचन (Appreciation) मात्र पाठकों के समक्ष रखा है। त्रुटियों और दोषों का विवेचन करने वाले आलोचकों की कमी नहीं। अश्क जी मेरे इतने समीप हैं कि भरसक प्रयत्न करने पर भी मैं तटस्थ नहीं रह सकी। मैं यह स्वीकार कर लेती हूँ। क्योंकि पूर्ण तटस्थता तो केवल पाषाण को प्राप्त है और मैं इन्सान हूँ। ये नाटक मुझे अश्क जी के पहले नाटकों से अधिक पसन्द हैं और इन पंक्तियों द्वारा मैंने अपनी पसन्द के कारण, पाठकों के सम्मुख रखने का प्रयत्न किया है। पाठक मेरी हर बात से सहमत होंगे और संग्रह के प्रत्येक नाटक को पसन्द करेंगे, इस बात की न मुझे आशा है न वाञ्छा, किन्तु ये पंक्तियाँ इनमें से किसी नाटक के रसास्वादन में भी यदि पाठकों की सहायता करेंगी तो मैं अपने प्रयत्न को सफल समझूंगी।

पंचगनी
३-१०-१९४७

कौशल्या

चरवाहे

पात्र

रत्नी	राय धनी राम (रत्नी के मामा)
किश्नी	कान्त
जसोदा	राजा
मामी	गोविन्द (चरवाहा जो रंगमंच पर नहीं आता)
बुआ	वृन्दावन
	बिल्लू
	कुन्नू आदि

स्थान—

दक्षिण पंजाब का एक गाँव

समय—

दिन का तीसरा पहर

[पर्दा उठने से पहले बैकग्राउंड में दूर से चरवाहों के गाने की ध्वनि गूँजती हुई-सी आती है ।]

हे जी, हाँ...आँ..., हाँ...आँ..., हाँ...आँ , हाँ
म्हारा जंगल का सब साज सदा रहती है दूब हरी
अरर, रर, रा
अरर, रर, रा
अरर, रर, रा
रहती है दूब हरी
सदा रहती है दूब हरी

[पर्दा धीरे-धीरे उठता है । रत्नी अपने कमरे की खिड़की में चुपचाप खड़ी गाना सुन रही है । कमरा साफ और सलीक़े से सजा है । शहरी की अपेक्षा यह देहाती अधिक दिखाई देता है । तिपाई और कुर्सियों के अतिरिक्त एक छोटा-सा तख्त भी इसमें बिछा है । गाने की ध्वनि धीरे-धीरे दूर होती जाती है ।]

किसे के रे, धन का भरे से खजाना
कोई रे, करता काम बेगाना

म्हारा मन अपने का राज, रहे आशा की वेल भरी !

रत्नी—(कमरे मे आकुलता से घूमते हुए अपने आप) चरवाहे गा रहे हैं—अपना अमर, आजाद, रस भरा गीत—जी चाहता है, सब बंधन तोड़ दूँ ; इस रोज-रोज की गुलामी से छुटकारा पा लूँ ; सब कुछ देकर आजादी ले लूँ—गाती फिरूँ ; ढोर डगर चराती फिरूँ और दोनों बाहें फैलाकर जीवन को अपने आलिंगन में भर लूँ ।

[कान्त प्रवेश करता है ।]

कान्त—किससे बातें कर रही हो रत्न ?

(कुर्सी पर बैठ जाता है)

रत्नी—(आँखें फैलाये उन्मद-सी खिड़की मे देखती हुई) चरवाहे गा रहे हैं—

कान्त—कहा गा रहे हैं ?

रत्नी—यह सुनो . यह सुनो...

कान्त—मुझे तो कुछ सुनाई नहीं देता ।

रत्नी—(आँखे खिड़की से हटा कर) शायद वे दूर चले गये हैं । पर मैं अब भी उनका गीत सुन रही हूँ । वह मेरे कानों मे अब भी गूँज रहा है । रस भरे जीवन का रस भरा गीत !

कान्त—(कुर्सी पर पीछे की ओर को लेटता हुआ) रस भरे गीत जीवन की कटुताओं से निकलते हैं ।

रत्नी—(जैसे अब भी गीत सुन रही है) स्वच्छन्द प्राणों का स्वच्छन्द गीत !!

कान्त—स्वच्छन्द कहाँ, प्राण तो जीवन की कारा में बन्द हैं । जन्म इस कारा की चौखट है ।

(रत्नी चुप रहती है, व्यग्रता से कमरे में घूमने लगती है)

कान्त—और चरवाहे क्या स्वतन्त्र हैं ? (ओठों में हँसता है) प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे का जीवन सुखद और सुनहला दिखाई देता है। चरवाहे समझते होंगे, तुम रानी हो...

रत्नी—(मुड़कर व्यंग से हँसती है) रानी.. !

(खिड़की की सिल पर बैठ जाती है)

कान्त—और तुम समझती हो, चरवाहे अपने मन के राजा हैं। जहाँ चाहते हैं, जाते हैं, जो चाहते हैं करते हैं, किन्तु, भूख, प्यास, विपन्नता.... .

रत्नी—परवशता से हजार दर्जे अच्छी है। यह रोज-रोज का अपमान, ताने-मेहने, व्यग-उपहास तन और मन की कैद !—मन प्राण स्वतन्त्र हों तो भूख-प्यास सही जा सकती है।

कान्त—(हँसकर) यह किसी भूखे से पूछो।

रत्नी—(उतर कर व्यंग्य से) तुमने अपनी आत्मा को बेच दिया है और अपने चचा के धन पर मौज उड़ाते हुए तुम अपमान सह लेते हो...

कान्त—रत्नी...!

रत्नी—तुमने स्वय अपनी आत्मा को बेच दियाहै, दास बना दिया है और इस दासता के लिए युक्तिया ढूँढ निकाली हैं और तुम कवि कहलाते हो ! काश कवि न होकर तुम मात्र एक चरवाहे होते !!

कान्त—(खोखला कहकहा लगाता है और उठकर कमरे मे घूमता है) चरवाहा। (हँसता है) मैं चरवाहा ही तो हूँ। कल्पनाओं के

ढोर चराता हूँ। प्रायः वे बिखर-बिखर जाते हैं, कई अनजानी खेतियों में चले जाते है। मैं इन्हे फिर ढूँढ-ढूँढ कर इकट्ठे कर लाता हूँ।

रत्नी—(फिर जाकर खिड़की मे खड़ी हो जाती है और कुछ निमिष चुपचाप बाहर शून्य में देखती है। फिर मुड़कर दबी हुई घृणा से) तो तुम कल्पनाओं के डगर ही चराया करोगे। जीवन के ढोर हाँकना तुम्हारे भाग्य मे नहीं। कल्पना, कल्पना, कल्पना और बस। —गोविन्द को देखा था ..

[बिल्लू कन्धे पर बस्ता लटकाये दरवाजे से झाँकता है]

बिल्लू—रत्नी, गोविन्द आ गया।

रत्नी—कहाँ है ?

बिल्लू—थाने मे है। शायद डाकू पकड़े गये हैं। हथकड़ियाँ पहने खड़े थे। मैंने स्कूल से आते हुए देखा उन्हे।

[फिर मुँह फेरकर चला जाता है]

रत्नी—(अपनी बात को जारी रखते हुए) वह कभी भूखा प्यासा हो सकता है, उसके तन पर इतने बहुमूल्य वस्त्र भी नही हो सकते, पर उसकी आत्मा स्वतन्त्र है और स्वतन्त्र आत्मा का चमत्कार देखा ..

कान्त—(खिन्न हँसी से) चमत्कार ?

रत्नी—यह चमत्कार नहीं तो और क्या था। डाकू हमारे मकान पर चढ़े फायर कर रहे थे और समस्त गाँववाले, अपने-अपने मकानों के किवाड़ लगाये, लिहाफों मे दुबक गए थे।

कान्त—मैंने फायरों की आवाज नही सुनी।

रत्नी—तुमने अपने झरोखे भी बन्द कर लिए होगे।

[किश्नी बस्ता लिए प्रवेश करती है और चुपचाप पुस्तके अलमारी मे रखती है]

रत्नी—यह किसी चमत्कार से कम नही। उस समय किसका साहस था जो घर से बाहर निकलता, किन्तु गोविन्द को जब पता चला कि राय धनीराम का मकान लूटा जा रहा है तो वह निधड़क दो साथियो को लेकर चल पड़ा। डाकुओं ने आते-आते मकानों की कुण्डियाॅ बाहर से लगा दी थीं। उन्होने धीरे-धीरे सब कुण्डियाॅ खोल दी और अपने साथियो को जा जगाया। उन्हे फटकारा कि उनके शाह का मकान लूटा जा रहा है और वे घरो मे दुबके पड़े हैं। क्या इस प्रकार चुप बने रहने से उनका मस्तक सदैव के लिये नत न हो जायगा, किसी दूसरे गाॅव वालों के सामने क्या वे छाती तानकर चल सकेगे? दंगलों मे गबरूओं को ललकार सकेगे? और सबको साथ लेकर वह डाकुओ की प्रतीक्षा में गाॅव के मोहाने पर जा खड़ा हूआ।

कान्त—मैं रात देर तक पढ़ता रहा, इसलिये सो गया था।

रत्नी—तुम जागकर भी क्या कर लेते? जब सारा गाॅव बाहर आ गया था, तुम जब भी न आये।

कान्त—मैं...मैं...

रत्नी—(व्यग से) तुम अपनी कल्पना के डंगर चरा रहे होगे (झुरझुरी-सी लेती है) मैं जीवन पर्यन्त वह दृश्य नही भूल सकती। डाकू सामान से भरी हुई मोटर तो ले गये, किन्तु उनके चार साथियो को गोविन्द और उसके सहचरो ने उलझा लिया और वह द्वन्द्व (फिर झुरझुरी लेती है) मैं कभी नही भूल सकती।

किश्नी—(पुस्तकें रखते-रखते मुड़कर) सिर पर तवे बाँधकर आये थे डाकू !

रत्नी—और फिर उनकी लाठियाँ पोरेवाली थीं—मरियाँ पड़ी हुई थीं उनमें—जिस पर एक पड़ जाती वह फिर न उठता। शोर सुनकर दूसरे गाँव वाले भी आ गये, किन्तु किसमें दम था जो उनके सामने टिक पाता—ऐसी लाठी चलाते थे डाकू (लम्बी साँस लेती है) वह साँसी मर गया, पर उसकी वीरता मैं कभी न भुला सकूँगी। विद्युत के से वेग से उसकी लाठी घूमती थी। मुझे याद है तीन बार डाकुओं ने गाँववालों को पीछे धकेल दिया—यदि एक लाठी की चोट से गिरता, तो चार भय ही से गिर पड़ते—गोविन्द के समस्त साथी घायल हो गये, किन्तु वह डटा रहा और वही था जिसने उस साँसी को मार गिराया। मरते समय उसने कहा था, 'मैं उस वीर को एक नजर देखना चाहता हूँ जिसने मुझे गिराया है।'

किश्नी—पचास डाके अब तक वह डाल चुका था।

रत्नी—मरने से पहले गोविन्द के हाथ पर अपना हाथ रखकर साँसी ने कहा था, "जीवन का मेला ही उठ गया मित्र, नहीं तू मेरे साथियों में होता।"

[जोश में एक दो बार कमरे में चक्कर लगाती है। किश्नी पुस्तकें रखकर जाने लगती है]

—(किश्नी से) किश्नी तनिक देखना—गोविन्द थाने से आया है या नहीं ?

किश्नी—मुझे तो भूख लगी है। मैं पहले जाकर खाना खाऊँगी, भूखी ही पाठशाला चली गई थी।

रत्नी—बड़ी अच्छी है मेरी किश्नी बहिन ! तनिक देखना जाकर । मैं जानना चाहती हूँ, कितने डाकू पकडे गये है और कितने रह गये है ।

किश्नी—गोविन्द की बहिन अभी यहाँ आएगी । वह आते-आते अवश्य ही पता लेकर आएगी । मैं तो जा रही हूँ ।

[चली जाती है]

रत्नी—गोविन्द एक को भी नहीं छोडेगा । उसने कहा था—"रत्नी, मैं एक-एक डाकू चुन लाऊँगा । पुलिस के भरोसे रहे, तो मिल चुके डाकू और शाह अभी तक आए नही !" और वह अपने साथियों को लेकर पुलिस के साथ चला गया ।—उसका शरीर लोहूलोहान हो गया था । मैंने उसकी मरहम-पट्टी की तो हँसकर कहने लगा—"यह तो साधारण चोटे हैं रत्नी । ऐसी तो खेल-खेल मे आ जाती हैं ।"

कान्त—(व्यंग से हँसकर) जब तुम जैसी कोई युवती पट्टी बाँध रही हो, तो युवकों के गहरे घाव भी साधारण खरौंचे बन जाते हैं ।

रत्नी—बेकार बैठे-बैठे तुम विष संचय करते रहते हो और बस—

कान्त—(उठता हुआ) विष.. ..

(हँसता है और खिड़की मे जा खड़ा होता है)

रत्नी—और मैं कई बार सोचती हूँ राजा होता तो उसका बल देखती बड़ी डींगे मारा करता है । गोविन्द को लड़ते देखता तो लाठी उठाना छोड़ देता ।

कान्त—राजा तो मुफ्त सा नही ।

रत्नी—वह सदैव अपने बल-पराक्रम के सम्बन्ध मे गप्पे हाँका करता है । होता तो उसकी भी परीक्षा हो जाती ।

कान्त—वह बलवान है।

रत्नी—जब तक अवसर न पड़े सभी बलवान होते हैं।

कान्त—किन्तु अब तक तो तुम उसके बल-पराक्रम के गीत गाया करती थीं। मैं तो भला कल्पना की दुनिया में बसनेवाला निर्बल कवि हूँ पर राजा तो .....

रत्नी—मैंने पराक्रम का नाम सुना था, उसे आँखों से न देखा था (फिर झुरझुरी लेती है) मैं कभी नहीं भूल सकती। जब से मैंने होश सँभाला है, मैंने ऐसी लड़ाई नहीं देखी। क़िस्से कहानियों में अवश्य डाकुओं का हाल पढ़ती थी—सोचा करती थी—किस प्रकार दस-पन्द्रह डाकू सारे गाँव को डराकर सब कुछ लूट-खसोटकर ले जाते हैं, किन्तु उस रात मैंने स्वयं देखा...

कान्त—तुम रात की बात करती हो। वे दिन-दहाड़े सब कुछ लूट ले जाते हैं।

[खोखली हँसी हँसता है]

रत्नी—(अपनी बात जारी रखते हुए) अभी मेरी आँख लगी ही थी कि मैंने बन्दूकों की आवाज सुनी। इसके बाद ऐसा प्रतीत हुआ जैसे सारे गाँव को साँप सूँघ गया हो। नम्बरदार के घर से तवेवाले बाजे की आवाज आ रही थी। सदना अपनी तरंग में मस्त गा रहा था, किन्तु बन्दूक की आवाज सुनते ही, सब दम साधकर रह गये। मेरा जी धड़कने लगा। मैंने करवट बदली। फिर बन्दूक के फ़ायर की आवाज आई। रात के सन्नाटे में वह आवाज दूर तक गूँजती हुई चली गई। और फिर निस्तब्धता जैसे और भी गहरी हो गई। ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे हवा भी डरकर रुक गई हो। मेरा दिल धँसने-सा लगा। जी कड़ा करके मैं खिड़की में आई।

कान्त—किन्तु मैंने सुना कि बलबीर बाहर बैठा था। शोर न मचाया उसने ?

रत्नी—बलबीर ने चोरबत्ती जलाई थी और उसके प्रकाश मे मैंने देखा—दस-बाहर आदमी सिरों पर मुँड़ासे बाँधे आ रहे हैं। उनकी आकृतियाँ मुँड़ासों के कारण दिखाई न देती थीं। आगे-आगे चलने वालों के हाथों मे बन्दूके थीं। उनमें से एक ने फायर किया। मैंने आँखे बन्द कर लीं—दूसरे क्षण मैंने देखा—बलबीर की मुश्कें कसी हुई हैं। सहसा सब कुछ मेरी समझ में आ गया। मैं भाग कर मामी के कमरे मे गई, किन्तु इससे पहले कि मैं मामी से कुछ कहती डाकू आ गये।

कान्त—मामी ने शोर न मचया ?

रत्नी—उनके पास बन्दूकें थीं। "किसी ने चूँ भी की तो उसे गोली मार दी जायगी" उन्होंने कहा और बन्दूक दिखाकर चाबियाँ माँगी। मामी ने कहा, "हमारे पुरुष चाबियाँ ले गये हैं। हमारे पास चाबियाँ कहाँ ?" तब डाकू बँधे हुए बलबीर को ले आये और उसे धरती पर लिटा दिया—इससे पहले कि डाकू बन्दूक उठाते, मामी ने चाबियाँ फेंक दीं।—चार लड़कियों के बाद तरस-तरस कर पाया हुआ बेटा—"इसे कुछ न कहो, जो लेना है ले जाओ" मामी ने कहा और दोनों हाथो से चेहरा ढक लिया। गैरेज से डाकुओ ने मोटर निकाली और सामान लूटने लगे। एक डाकू बन्दूक लेकर हमारे सामने खड़ा रहा—नाटा-सा कद, मैला फटा तहबन्द और कमीज—मैं समझती थी—डाकू बहुत भयानक, लम्बे, तगडे, राक्षसों से डरावने होते होंगे, किन्तु उसे देखकर तो मुझे निराशा हुई। एक-दो बार मेरे जी मे आई कि एक ही बार उछलकर उसे गले से पकड़ लूँ और उसका गला इतना घोटूँ, इतना घोटूँ कि

उसका दम निकल जाए। किन्तु फिर यह सोच कर मैंने अपने आपको रोका कि डाकू कहीं बलबीर ही को न मार दे। बस डाकुओं ने सब कुछ लूटा और मोटर में डालकर चल दिये।

कान्त—(खिड़की में बैठा सिर्फ टाँगें हिलाता है)

रत्नी—(कमरे में चुपचाप एक-दो चक्कर लगाकर) जब वे तनिक दूर चले गये तो मामी ने चिल्लाना शुरू किया। तब लोग घरों से बाहर निकले और 'क्या हुआ', 'क्या हुआ' कहते हुए इकट्ठे हो गये। (अतीव उपेक्षा से) भगोड़े! मुझे उन पर अत्यन्त क्रोध आया। मन में आई कि बन्दूक यदि हाथ में हो तो उन सबको भूनकर रख दूँ।

[आवेश में एक-दो बार फिर कमरे में घूमती है]

—तभी एक व्यक्ति भागा-भागा आया और उसने बताया कि गोविन्द और उसके साथियों ने कुछ डाकुओं को घेर लिया है और फिर जो जिसके हाथ में आया लेकर भागा। मैं भी इस भीड़ में चुपचाप खिसक गई—राजा होता तो देखती उसमें कितना बल है। तुम कहते हो वह बहादुर है, पर अखाड़ों की वीरता और लड़ाई की वीरता में अन्तर है। अखाड़ों में अपनी लाठियों के चमत्कार दिखानेवाले कई पराक्रमी उस दिन जी छोड़ गये।

कान्त—(चुपचाप सीटी बजाता है)

रत्नी—धन की गोद में पली हुई वीरता कायरता ही का दूसरा नाम है।

कान्त—(व्यंग्य से हँसता है)

रत्नी—(चीख कर) मैं क्या ग़लत कहती हूँ?

कान्त—(खिड़की से उतर कर कमरे मे सिर नीचा किये हुए घूमता हुआ) पछी को पर लग गये हैं। वह अब बहुत देर तक घोंसले मे न रहेगा।

रत्नी—क्या कहते हो ? तुम्हारी बाते मेरी समझ मे नहीं आतीं।

कान्त—वे तुम्हारी समझ मे आने के लिए नही।

रत्नी—फिर ?

कान्त—सोचता था कहीं तुम स्वय डाकुओं मे शामिल न हो जाओ।

रत्नी—(हँसती है) मैं ..डाकू . ...

कान्त—तुमसे डाके का हाल सुनते-सुनते ऐसा लगा जैसे तुमने इस डाके में रस लिया है, जैसे इस डाके से तुम्हे तनिक भी भय नहीं लगा।

रत्नी—भय, मुझे .

कान्त—तुम्हारी मामी अचेत हो-हो जाती है, तुम्हारे घर पर सहम छाया हुआ है; सारा गॉव भय के मारे जैसे सिकुड़ रहा है, किन्तु तुम...

रत्नी—डाकू तो पकड़े गये हैं और जो है, वे पकडे जाएँगे।

कान्त—पर...

रत्नी—और कदाचित् सामान भो मिल जाए।

कान्त—पर तुम

रत्नी—मैं उनकी वीरता को सराहे बिना नहीं रह सकती (झुरझुरी-सी लेती है) मैं कभी नहीं भूल सकती वह .

कान्त—और यदि वे तुम्हे उठा कर ले जाते ?

[जसोदा जल्दी-जल्दी प्रवेश करती है।]

जसोदा—कुछ सुना तुमने रत्नी ?

रत्नो—क्या ?

जसोदा—डाकू तुम्हे उठाने आए थे।

रत्नी—तुमसे किसने कहा है ?

जसोदा—सारे गॉव में इस बात की चर्चा हो रही है ! और भैया गोविन्द ने भी यही बताया—शेष सब डाकू पकड़ लिये गये हैं।—एक चिडीचॉदी का था, दो माजरे के थे और एक हमारे ही गॉव का था...

रत्नी—हमारे ही गॉव का ?

जसोदा—बस डाका डलवाने के बाद चुपचाप अपने घर मे जाकर सो रहा।

रत्नी—पर था कौन ?

जसोदा—तिगल।

कान्त और रत्नी—तिंगल !

जसोदा—हॉ तिंगल—चरवाहा !

रत्नी—नीच ! मै समझती थी अब वह सुधर गया है। जब भी उसके बाड़े के पास से गुजरती थी, तरह-तरह के आवाजे कसा करता था। कुछ दिन तक तो मैं चुप रही, फिर एक दिन मुझे क्रोध आ गया गर्दन से पकड़ कर मैंने उसे पीट दिया।

जसोदा—तभी, जब भैया गोविन्द से भी उसकी हाथापाई हो गई थी।

रत्नी—और मामी ने मुझ पर सौ-सौ लाछन लगाये थे।

जसोदा—तभी से वह तुमसे खार खाए बैठा है। गोविन्द ने बताया कि तिंगल ने डाकुओं को इस शर्त पर ही तुम्हारे घर का सब भेद बताने का वचन दिया था कि वे घर को लूटने के अतिरिक्त तुम्हे उठाकर ले जाने में भी उसकी सहायता करे और भैया तो बताते थे कि वास्तव में तिंगल ही डाकुओं को बुलाकर लाया था।

रत्नी—कमीना !

जसोदा—डाकुओं ने उससे प्रतिज्ञा की कि हम रत्नी को उठाने में तुम्हारी सहायता करेंगे, किन्तु अपना काम निकालकर उन्होंने तुम्हे उठाकर ले जाने से इन्कार कर दिया। 'धन-माल तो छिपाया जा सकता है' उस साँसी ने कहा था, 'पर इसे कहाँ छिपा कर रखेंगे ?' अभी तुम्हारे मामा के सामने थाने मे एक डाकू ने यही बयान......

कान्त—रत्नी के मामा आ गये ?

रत्नी—(अत्यन्त उपेक्षा से) नीच !...

कान्त—(ज़रा हँसकर) अब तुम उसको चाहे हजार गालियाँ दे लो पर यदि वे तुम्हे उठाकर ले जाते... ..

[हँसता हुआ चला जाता है]

रत्नी—यदि वे मुझे उठाकर ले जाते, (मुट्ठियाँ भींचकर) यदि वे मुझे उठाकर ले जाते (मुट्ठियाँ ढीली छोड़कर) मैं प्रसन्न होती.....

जसोदा—क्या कहती हो रत्न ?

रत्नी—(आर्द्र कंठ से) तुम्हे मालूम नहीं जसोदा। ज्योंही मामी को इस बात का पता चलेगा, वे डाके का सारा अपराध मुझी पर थोप देंगी। पहले ही वे सदा मुझे कोसती रहती हैं कि जब से यह लड़की घर में आई है विपत पर विपत आ रही है—बलबीर को जुकाम हो जाए, मामा को व्यापार में घाटा आ जाए, मामी की कमर दुखने लगे, किश्नी परीक्षा में फेल हो जाए, सब मेरे कारण (सिसकती है) मैं कहती हूँ—मामाजी क्यों मुझे मेरी मरती हुई माँ की छाती से उठा लाये ? क्यों न मुझे उसके साथ ही मर जाने दिया (और भी ज़ोर से सिसकती है) क्या मुझे इस तरह दिन-रात सूइयाँ चुभोने के लिये ! निशिदिन मेरे दिल में कचोके लेने के लिए—

जसोदा—सन्तोष करो...

रत्नी—वे तो पहले ही तीन दिन से मेरे दुर्भाग्य को, मेरी कुदृष्टि को मेरी बुरी छाया को कोस रही हैं। जब उन्हे ज्ञात होगा कि यह डाका तिगल ने मेरे ही कारण डलवाया है, तो क्या वे मुझे जीने देगीं! जानती हो, जब मैंने तिगल के मुँह पर चपत लगाई थी तो उन्होंने मेरी कितनी निन्दा की थी। और अब—अब वे क्या-क्या बातें न बनाएँगी!!

[बैकग्राउड में दूर चरवाहों के गाने की आवाज़ आती है, जो धीरे-धीरे समीप आती जाती है]

हे जी...हाँ आँ,...हाँ आँ,.. हाँ आँ, हाँ

म्हारा जगल का सब साज सदा रहती है दूब हरी

अरर, रर, रा

अरर, रर, रा

अरर, रर, रा

रहती है दूब हरी—

सदा रहती है दूब हरी—

रत्नी—(दीर्घ निश्वास छोड़ती है) ओह ! कहीं मैं इन चरवाहों की भाँति स्वच्छन्द, स्वतन्त्र, रोज-रोज़ के तानों, मेहनों, कोसनों से स्वतन्त्र, इस परवशता और पराधीनता से मुक्त, गाती नाचती घूम सकती। (अचानक मुड़ती है) तुम्हारे भैया अभी घर नही आये जसोदा ?

जसोदा—भैया आ गये हैं। उन्हीं का सन्देशा लेकर तो आई थी। उन्होंने कहा है—रत्नी से कहना, मैंने अपना प्रण पूरा कर दिया है।

रत्नी—तुम उनसे जाकर कह दो—मैं मिलने आती हूँ, कहीं जाएँ नहीं।

जसोदा—उन्होंने कहा था—रन्नी से कहना, यदि आये तो मुझे बालू के कुएँ के पीछे, शिव के मन्दिर मे मिले।

रत्नी—बालू के कुएँ के पीछे ? ......बालू के किस कुएँ के पीछे ?

जसोदा—उसके जो स्टेशन के पास है। घर पर तो भीड़-सी लगी रहती है। एक आता है एक जाता है !

रत्नी—तुम जाओ। कहना मैं अभी दस मिनट मे आ रही हूँ। मैं तो उनसे बहुत कुछ पूछना चाहती हूँ। कितने डाकू पकड़े गये, ? किस प्रकार पकड़े गये ? सब कुछ मैं उनसे सुनना चाहती हूँ।

[जसोदा चली जाती है चरवाहों के गाने की ध्वनि और समीप आ जाती है।]

किसी के रे मोटर घोडा मै रे गड्डी
किसी के रे सुन्दर महल मै रे मड्ढी
म्हारा मन का तखत रे ताज, करेंगे हो वेड़ा पार हरी
हे जी हॉ...ऑ, हॉ . ऑ, . हॉ...ऑ..... हॉ

[क्षण भर के लिए यह ध्वनि स्टेज पर छाकर मौन हो जाती है]

रत्नी—(आतुरता और आवेग से कमरे मे तेज़-तेज़ घूमती है) ओह, ओह, मैं इस कैद में नहीं रह सकती। यह रोज-रोज का तिरस्कार, अपमान, लाछना, निन्दा नहीं सह सकती। अभी मामी को पता लग जायेगा कि तिगल मेरे ही कारण डाकुओं को बुला लाया था और फिर सारे व्यंग, समस्त ताने, सब कोसने जाग उठेंगे और विषबुझे तीरों की भॉति मेरी नस-नस छेदेंगे।

मामी—(वाहर से मामी और मामा के वातें करने की आवाज़ आती है) मैं तो पहले ही कहती थी कि यदि यह कुलच्छिनी इस घर में रही तो न जाने कौन कौन से उपद्रव का मुँह हमें देखना पड़ेगा।

रत्नी—(शीघ्र-शीघ्र वायीं ओर के दरवाज़े से निकलती हुई) ओह ! विषाक्त जिह्वा लिये मामी इधर ही आ रही है।

मामा—(वाहर से) इसमे इस वेचारी का क्या दोष है ?

मामी—(वाहर से) इसका नहीं तो और किसका है। न जाने दिन भर कहॉ कहॉ ऑखे मटकाती फिरती है ? लज्जा-शरम तो जैसे वेच कर खा ली है इसने।

[रत्नी के मामा रायधनीराम, मामी, वुआ, कान्त, कुन्तू और एक दो स्त्रियॉं प्रवेश करती हैं। मामी और मामा आगे-आगे हैं और शेष सव पीछे-पीछे। मामा, कान्त और वुआ कुर्सियों पर वैठ जाते

हैं। मामी खिड़की में बैठती है। शेष सब खड़े
रहते हैं

मामा—(कुर्सी पर बैठते हुए) बलबीर की माँ तुम कैसी बातें करती हो ?

मामी—(मुंह बिचकाकर) मेरी बाते तो आपको सदा जहर लगती हैं। सियानी लड़की घर मे आराम से बैठती है, इसकी भाँति गलियो की धूल नहीं छानती फिरती। मेरा माथा तो उसी दिन ठनका था, जिस दिन तिंगल के मुँह पर इस निर्लज्ज लड़की ने थप्पड़ दे मारा था, उसी दिन मैंने कहा था कि यह कम्बख्त अवश्य कोई न कोई विपत लाएगी। मेरे भी तो आखिर लड़कियाँ हैं, उन्हे कोई क्यो नहीं छेड़ता (**और भी मुँह बिचका कर**) मक्खियाँ वही मँडराती हैं जहाँ मधु होता है।

मामा—तुम क्यों व्यर्थ ही उसे कोस रही हो। किसी मे साहस होता है किसी में नहीं। कोई किसी दुष्ट की दो बाते सुनकर चुप रह जाती है, कोई चुप नही रह सकती।

मामी—आपके बढ़ावे ही ने तो उसे इतना साहस दिलाया है कि वह हर ऐरे-ग़ैरे के मुँह आती है, फिर तिंगल ..

मामा—(**कुर्सी से उठते हुए जलकर**) तिंगल बदमाश है।

मामी—(**मुँह बिचकाकर**) और यह भलीमानस ! एक बिगड़े बदमाश चरवाहे से उलझना कहाँ की भलमनसाहत है। भली लड़कियाँ अपने मानापमान का ध्यान रखती हैं। इसकी भाँति गुंडों से उलझती नहीं फिरती। ढँढोरा नहीं पीटती फिरतीं। (**और भी मुँह बिचकाकर**) देख लिया न अपनी इस लाड़ली की भलमनसाहत का परिणाम। **(रोने लगती है)** न भाई, मुझको ऐसी भलमनसाहत न चाहिए।

अब तो ईश्वर की कृपा से सब कुछ मिल गया। नहीं, हम तो लुट गये थे (और भी भरे गले से) जब डाकुओं ने बलवीर को धरती पर लिटा दिया और बन्दूक चलाने लगे तो मेरे हाथ-पाँव फूल गये। न बाबा, यह भलमनसाहत हमें रास न आएगी। आज तिंगल आया है, कल कोई और चढ़ दौड़ेगा।

मामा—(फिर कुर्सी पर बैठते हुए) तो क्या मैं उसे भट्टी में झोंक दूँ ?

मामी—भट्टी में क्यों झोंक दे। सियानी हो गई है, हाथ पीले कर दे। अपने घर जाए और मेरे घर से यह बला टले। .

कान्त—बला...

[व्यंग से हँसता है]

मामी —तुम नहीं जानते बेटा, जब से यह कुलच्छिनी आई है, घर पर बीमारी और विपत की छाया मँडरा रही है। इतनी देर हो गई, सुख शान्ति से दिन बीत रहे थे। कभी काहे को ऐसी बातें देखी-सुनी थीं और आप उठा लाये इसे। भला उसकी सुसरालवाले मर गये थे—बिल्ली के भागों छींका टूटा। इधर ये लड़की उठा लाये उधर इनके बहनोई ने दूसरा विवाह कर लिया।

कान्त—लेकिन मामी जी......

मामी—तुम नहीं जानते बेटा, कई बच्चों की छाया अशुभ होती है। कई बच्चे आते हैं सुख और सम्पन्नता साथ लाते है, कई आते हैं रोग और विपत लाते हैं। मलावी की भतीजी ही को देख लो। जब से घर में आई बेचारी पर विपत के पहाड़ टूट पड़े। पहले पति मरा, फिर देखते-देखते युवा पुत्र हैज़े का शिकार हो गया। फिर चरनी पर

खड़ी-खड़ी दोधार गाय अफारे से गिरकर मर गई। वह तो भगवान की दया से शीघ्र ही मलावी को उससे छुटकारा मिल गया, नहीं तो जाने और कौन-सी विपत्तियाँ टूटतीं उसके घर पर!

मामा—अच्छा हुआ जल्दी मर गई नहीं जाने कितनी दुर्दशा होती उसकी।

मामी—(सुनी अनसुनी करके) और फिर ले ही आये थे तो पाला-पोसा अब उसे कहीं किनारे लगाएँ।

मामा—तो कहाँ भाड़ में झोंक दूँ। लड़का भी मिले। यों ही कहीं ऐसी-वैसी जगह व्याह दूँ, लड़की की सारी आयु रोते बीत जाए और बहिन की आत्मा...

मामी—(मुँह बिचकाकर) बहिन होती तो न जाने किस राजकुमार से अपनी इस बेटी का विवाह करती।

[बैकग्राउंड में गाड़ी के स्टेशन पर आने और रुकने की आवाज़ आती है। इंजन 'शाँ-शाँ' करता है]

मामा—शाम की गाड़ी तो आ गई। वृन्दावन आ ही रहा होगा। जब डाके का समाचार मिला तो हम बैठे हिसाब-किताब देख रहे थे। उसने कहा—'तुम चलो मैं अभी तुम्हारे पीछे गाड़ी में आता हूँ।'

बुआ—मैं कहती हूँ बेटा राजा के पिता से क्यों नहीं पूछ देखते रत्नी के लिए?

मामा—लड़का कुछ खुले विचारों का है बुआ। मैं नहीं चाहता कि वह मुझे इनकार कर दे। एक बार बातों-बातों में मैंने अपनी शान्ता के लिए उसका दिल टटोला था। उसने कहा था—चाचाजी

मैं अभी विवाह ही नहीं करना चाहता। गाँव का मामला है और बात कहकर मैं गँवाना नहीं चाहता।

[बैकग्राउंड में गाड़ी की सीटी और फिर उसके चलने की आवाज़ आती है]

कान्त—किन्तु दो वर्षों में तो—वह किसी ने कहा है न—पुल के नीचे से काफ़ी पानी निकल जाता है।

बुआ—माता-पिता का इकलौता लड़का है। मन आए सो करता है। बातों-बातों में मुझे कुछ ऐसा लगा कि वह रत्नी को पसन्द करता है यदि तुम उसके पिता से पूछ देखते...

[राजा जल्दी-जल्दी दाखिल होता है, साँस फूली हुई है]

राजा—मैंने यह क्या सुना चाचाजी ? यह किस दुष्ट का काम है ? पिछले पचास वर्षों में गाँव में कभी ऐसी दुर्घटना नहीं हुई। मैं तो माजरे गया हुआ था वहीं मुझे पता चला। उसी क्षण कार लेकर चल पड़ा। कुछ पता चला डाकुओं का ? चोरी-यारी तो वसीले के बिना होती नहीं। किस पर सन्देह है आपको। मैं तो सालों का...

मामा—तुम्हारी कृपा है बेटा। तिगल की बदमाशी थी। उसी ने डाकुओं को बुलाया और उन्हें भेद बताया था, किन्तु डाकू पकड़े गये हैं। गोविन्द ने बड़े साहस से मुकाबिला किया। सारे डाकू पकड़ लिये गये हैं और सामान भी मिल गया है।

राजा—मैं होता तो एक को भी न जाने देता। सबको भूनकर रख देता।

कान्त—उनमें से भी कुछ के पास बन्दूकें थीं। रत्नी कहती थी...

राजा—कहाँ है रत्ना, उसे देखा नहीं। क्या कहती थी वह...

[वृन्दावन घबराया हुआ प्रवेश करता है]

वृन्दावन—मैं कहता हूँ धनीराम, यह रत्नी गोविन्द के साथ कहाँ गई है ?

मामा—रत्नी ?

राजा—गोविन्द के साथ...

वृन्दावन—मैंने अभी चलती गाड़ी में उसे गोविन्द के साथ बैठे देखा।

मामा—(उठकर) क्या कहते हो ?

वृन्दावन—हम गाड़ी से उतरकर बातें करते हुए लाइन-लाइन चले आ रहे थे कि गाड़ी हमारे पास से गुजरी और हमने रत्नी और गोविन्द को एक डिब्बे में साथ-साथ बैठे देखा। मुझे देखते ही रत्नी चौंककर पीछे हटी किन्तु मैंने पहचान लिया।

मामा—(चीखकर) कुन्नू मोटर तैयार कर !

(जल्दी-जल्दी निकल जाते हैं)

मामी—मैं तो पहले ही कहती थी कि यह लड़की कुल को कालख लगायेगी।

[माथा ठोकती हुई निकल जाती है। सब उसके पीछे-पीछे चली जाती हैं]

राजा—रत्नी गोविन्द के साथ भाग गई—उस फटेहाल चरवाहे के साथ, जिसका काम अपने चचा के ढोर-डंगर चराना है।

कान्त—जब चचा किसी अनाथ भतीजे की जमीन जायदाद दबा ले तो गरीब भतीजे के लिए इसके अतिरिक्त और चारा भी क्या रह जाता है ! और फिर रत्नी तो चरवाहों का जीवन पसन्द करती है। अभी कुछ देर पहले वह कहती थी .....

राजा—(गरज कर) मैंने बचपन में बहुतेरे ढोर चराये हैं और मैं जानता हूँ जब मेरी गाय को कोई दूसरा हाँककर ले जाए तो मुझे क्या करना चाहिये ।

[तेज़ी से निकल जाता है]

कान्त—(उठकर अँगड़ाई लेता हुआ) जीवन...जीवन...जवानी...!
[पार्श्व में चरवाहों के गाने की आवाज़ आती है जो धीरे-धीरे स्टेज पर छा जाती है]

हे जी हाँ आँ, हाँ आँ, हाँ आँ, हाँ

[कान्त की जँभाही के मध्य पर्दा गिर जाता है]

मैमूना

पात्र

मैमूना—आठ नौ वर्ष की बच्ची—दबी दबी घुटी घुटी। बचपन की चञ्चलता उसके मुख पर यों झलकती है जैसे राख में दबी चिंनगारी।

फरीद—दो अढ़ाई वर्ष का बच्चा। मैमूना का भाई। लाड प्यार में पला, चंचल उद्दंड।

शीमा—दो अढाई वर्ष की बच्ची। फरीद की सहेली, शर्मीली, लजीली पर चतुर चालाक।

आमना—मैमूना की माँ। अठाईस तीस वर्ष की सुन्दर युवती—देखने में केवल अठारह बीस वर्ष की लगती है।

अरशद—आमना का दूसरा पति। कवि तो नहीं किन्तु कवि-सुलभ गुणों से युक्त है।

साजिद—आमना का पहला दिवगत पति।

खैरन—एक बूढ़ी दासी जो साजिद के समय से है।

बतूलन—अरशद की नौकरानी जो न बूढी है न जवान।

[पर्दा मकान की ऊपरी मंज़िल के एक कमरे में उठता है। सामने दीवार में दायीं ओर एक दरवाज़ा है जो बरामदे में खुलता है। इस बरामदे मे बाईं ओर नीचे से सीढ़ियाँ आती हैं और दायीं ओर रसोईघर है, किन्तु सीढियों का या रसोईघर का दरवाज़ा इस कमरे से नज़र नहीं आता। हाँ, बरामदे का बड़ा झरोखा साफ़ दिखाई देता है। और इस झरोखे से आनेवाली धूप बताती है कि दोपहर का समय है और सूरज खूब चमक रहा है। सामने की दीवार मे बाईं ओर भी दरवाज़ा है जो रसोईघर को जाता है। इस प्रकार रसोईघर बरामदे में भी खुलता है और कमरे मे भी।

दायीं दीवार में भी दरवाज़ा है,। जो ड्राइंगरूम को जाता है। बाईं दीवार में बरे को एक बडी खिडकी है जिसमे बडे बडे शीशे लगे हैं।

यह कमरा एक प्रकार से खाने और बैठने का कमरा है, क्योंकि इसमें सामने के दोनो दरवाज़ों के मध्य एक खाने की मेज़ रखी है जिसके चारो ओर कुर्सियाँ लगी है।

खिडकी की ओर को कौच का सेट और तिपाई भी पड़ी है। पर्दा उठते समय डाइनिंग टेबल की कुर्सियाँ मेज़ से लगी हुई हैं, केवल उनका पृष्ठ भाग दिखाई देता है। दाईं और बाईं दीवारो में दरवाजों के दोनो ओर दो अलमारियाँ हैं जिनके शीशो से चाय और खाने-पीने के सेट दिखाई देते हैं। बरामदे में खुलनेवाले दरवाज़े के अतिरिक्त शेष सब दरवाज़ो पर पर्दे पडे हुए हैं।

खैरन बी एक कौच से पीठ लगाए, पाँव पसारे बैठी दिखाई देती है। मैमूना उसके घुटनों मे सिर दिये रो रही है। खैरन उसे पुचकारती है पर वह निरन्तर सिसके जा रही है।]

खैरन—न मेरी मम्मो। बस, बस, इस तरह भी जी छोटा किया करते हैं। अरे वह आनेवाले ही होंगे।

[मैमूना ज़ोर से सिसकती है]

(अपने आप) इस बेचारी का भी क्या दोष ! बेगम तो इस तरह सलूक करती हैं जैसे अपनी जाई न हो, कहीं से गिरी पड़ी उठा लाई हों। (पाँव सिकोड़कर मैमूना को थपथपाते हुए) बस, बस, अब कोई दम मे आ जाएँगे। चल तुझे नरगिस के फूलों का गुलदस्ता बना दूँ—सुन्दर पीले-पीले सफेद फूलों का !

[मैमूना और भी ज़ोर से सिसकती है। खैरन बी बरामदे में जाती है और दूसरे ही क्षण फूलों का एक छोटा-सा गुलदस्ता बना लाती है। मैमूना वहीं बैठी लगातार सिसकती रहती है]

खैरन—(उसे गुलदस्ता देते हुए) ले बेटी, देख कितने खूबसूरत फूल हैं।

[मैमूना नहीं लेती और सिसकते हुए उसकी गोद में सिर छिपा लेती है]

—बच्ची ही तो है। सात-आठ बरस भी कोई उमर होती है। बाट देखते-देखते जरा-सा मुँह निकल आया बेटी का। पपड़ियाँ जम गईं होंठों पर। ले जाते साथ तो क्या था ?

[दूर से मोटर के हार्न की आवाज़ सुनाई देती है।]

—लो वह आ गये।

(मैमूना सिर उठाती है)

—सुनो मोटर के हार्न की आवाज़।

[पार्श्व भूमि मे कोई मोटर हार्न बजाती हुई निकल जाती है]

—ये कम्बख्त मोटरें भी एक जैसी आवाज निकालती हैं।

[मैमूना फिर उसकी गोद में सिर छिपाकर
सिसकने लगती है]

—(उसे थपथपाते हुए) और ले गई फरीद को भी साथ, छोड़ना था तो दोनों ही को छोड़ जाती। कब से राह तक रही है बेचारी। न सुबह से ठीक तरह खाया, न पिया। वहाँ दावत उड़ाने को जी कैसे मानता होगा बेगम का ! मेरे गले से तो एक कौर भी न उतरे।

(मैमूना सिसकी लेती है)

—कम्बख्त शीमा को भी न जाने क्या हो गया ! यो सारा सारा दिन यहाँ चिपकी रहती है, फरीद नहीं है न यहाँ आज।

[ऊपर आकाश में हवाई जहाजो की गूँज सुनाई देती है]

—अरे जहाज !

[मैमूना सिसकती है।]

अरे ये तो कई मालूम होते है। उठ देख खिड़की से (उसे छोड़ कर तेज़ी से खिड़की मे जाती है, खिड़की दिखाते हुए) अरी मम्मो भाग, देख कितने ढेर से है (गिनते हुए) तीन—छः—नौ ! देख, कितने नीचे।

मैमूना—(आँसू निगलते हुए खिड़की की ओर जाते जाते) नौ.. ...

खैरन—(मैमूना को गोद मे उठा कर दिखाते हुए) दस, ग्यारह, बारह।

मैमूना—(प्रसन्न होकर) बारह !

[हवाई जहाजों की गूँज पार्श्व भूमि से निकल कर समीप आ जाती है और कुछ क्षणों तक रंगमच पर छाई रहती है। फिर धीरे-धीरे दूर चली जाती है। और दूर से मोटर के हार्न को आवाज़ सुनाई देती है।]

मैमूना—(खैरन के साथ वापस आते हुए) बारह थे न खैरन ?

खैरन—(जो इस बात पर प्रसन्न है कि उसका ध्यान बटा) हाँ, बारह थे।

मैमूना—(आँसू पोंछते हुए, अत्यन्त सरलता से) ये बम क्यों नहीं गिराते ?

खैरन—(हँसते हुए) रबड के गोले तो नहीं होते बम। एक भी गिर जाता तो हम और हमारे साथ सब कुछ भक् से उड़ जाता।

[मोटर के हार्न का स्वर अत्यधिक समीप सुनाई देता है।]

खैरन—(बरामदे के झरोखे मे जाते हुए) ले तेरी मम्मा आ गई। गुब्बारे लाई हैं। हवा मे उड़ने-वाले। फरीद भी आ रहा है भागता हुआ ..और शीमा भी झाँक रही है कम्बख्त।

[मोटर की आवाज़ सुनकर मैमूना झरोखे की ओर जाती है कि फ़रीद हाथ में दो गुब्बारे लिये हुए भागता आता है]

फ़रीद—मम्मो, गुब्बारे !

खैरन—अपनी बहिन को भी एक गुब्बारा दे दे फरीद बेटा।

फरीद—हम नहीं देते।

[अन्दर की ओर भागता है]

मैमूना—कैसे नहीं देता ?

[उसके पीछे भागती है]

खैरन—(उनके पीछे आते हुए) अरे मम्मो...ठहर...मैं ले देती हूँ तुझे गुब्बारा...मम्मो...मम्मो...

[मैमूना फ़रीद के पीछे दाईं ओर के कमरे में भाग जाती है। बरामदे में आमना प्रवेश करती है, हाथ में दो-चार लिफ़ाफ़े उठाये हुए]

आमना—खैरन !

खैरन—आगई बेगम ! बड़ी देर लगाई !

[उसके हाथ से लिफ़ाफे लेकर खाने की मेज़ पर रखती है।]

आमना—मैं तो थक गई वहाँ।

[मेज के नीचे से कुर्सी निकालकर उसमें धँस जाती है।]

खैरन—अरशद मियाँ कहाँ है ? वह नहीं आये ?

आमना—रास्ते में नसीर के यहाँ रह गये (नफ़रत से) चोर चोर मौसेरे भाई ! जब देखो नसीर। न जाने उस के साथ मिल कर क्या मिसकोट किया करते है ? न उसे बात करने का सलीका, न बैठने-उठने की तमीज ! मैंने कहा—चलिए, फिर कभी आ जाइएगा, मैटनी देखने चलेंगे, माजिद ने कहा था...कहने लगे—तुम कार ले जाओ सीधे कैपिटल पहुँच जाना। मै नसीर के यहाँ से सीधा वहाँ जा पहुँचूँगा। माजिद को फोन किये देता हूँ, लेकिन मैं पूछती हूँ नसीर के बिना क्या गति नहीं उनकी ?

खैरन—मैटनी तो तीन बजे शुरू हो जाती है, और अब तो अढाई बजने को है।

आमना—देर हो गई रास्ते में फरीद पड़ गया पीछे नुमाइश देखने के लिए। सो उतर पड़ी। कुछ सामान-उमान खरीदा। बस अभी तैयार होकर चली जाऊँगी। साड़ी ही तो बदलनी है।

[बतूलन कुछ और लिफाफे हाथ में उठाये हुए प्रवेश करती है। और उन्हें भी लाकर मेज़ पर रख देती है।]

(बतूलन से) यह सब अन्दर रख दे। और देख, आम बर्फ में डाल दे। फरीद पड़ जायेगा पीछे अभी।

फरीद—(दूसरे कमरे से फ़रीद के चीखने की आवाज़ आती है) मेरा गुब्बारा ले लिया आँ .... आँ......मेरा गुब्बारा।

[पीटने की आवाज़ आती है]

—दे मेरा गुब्बारा......

[दूसरे क्षण अन्दर से मैमूना एक गुब्बारा लिये हुए भागती हुई आती है]

मैमूना—क्यों मैं न लूँगी गुब्बारा..

आमना—(उठकर उसे पकड़ते हुए) क्यों री चुड़ैल ! फिर रुलाया तू ने उसे (उसके मुँह पर एक चपत जमाती है) कितनी बार कहा है न छेड़ाकर उस गरीब को।

फरीद—(एक ही गुब्बारा लिये रोता हुआ भागता आता है) मेरा गुब्बारा...मेरा गुब्बारा...

आमना—(उसे गोद में उठाकर) बस, बस, मारा है मैंने मम्मो को, मेरा राजा बेटा...ले यह गुब्बारा (उसे गुब्बारा देते हुए झूलती है) फरीद तो मेरा बेटा है न (उसे चूमती है) और मैमूना ?

फरीद—(प्रसन्न होकर) खैरन की बेटी।

[शीमा शरमाती-शरमाती दरवाज़े से झाँकती है]

फरीद—(माँ की गोद से उतरता हुआ) शीमा, गुब्बारा ! आ खेलें।

शीमा—(भीतर आते हुए) पहले एक हमें दो।

फरीद—ले, (उसे गुब्बारा देता हुआ) आ, उधर खेलें।

[उसे साथ लेकर कमरे में चला जाता है]

मैमूना—(चपत की टीस को बाल-सुलभ विस्मृति में भूलकर और सहसा आमना के पास जाकर भर्राई हुई आवाज़ में) अम्मी !

आमना—क्या है ?

मैमूना—(और भी भर्राई हुई आवाज़ में) अम्मी !!

आमना—(चिढ़कर) परे हो मम्मो, क्या ऊपर चढ़े आ रही है (उसे परे धकेलकर) आते ही सिर पर सवार हो गई, इस चुड़ैल से किसी पल भी छुटकारा नहीं, बोल क्या कहती है ?

मैमूना—(चुप)

आमना—अब फूट भी मुँह से, क्या कहती है ?

[मैमूना रोने लगती है, बतूलन आमों का लिफ़ाफ़ा लिये रसोईघर में चली जाती है]

आमना—अरी खैरन ! क्या आते ही इसे मेरे पीछे लगा दिया। दो घड़ी भी इसे सँभालकर नहीं रखा जाता तुमसे ? देखती नहीं हो अभी आई हूँ। साँस भी नहीं ली कि यह अम्मी की बच्ची चिमट गई। सम्हाल इसे।

खैरन—(प्यार से) चल बेटी, चल उधर फरीद भय्या के पास।

आमना—उधर न ले जाना, सतायेगी उसे चुड़ैल। इधर ले जा बरामदे में, मैं जरा जाकर यह साड़ी बदल डालूँ।

[अन्दर कमरे में चली जाती है।]

खैरन—चल मम्मो बेटी, तुझे गुड़िया बना दूँ।

[मैमूना सिर्फ़ सिसकती है]

—(उसे पुचकारती है) रोया नहीं करते बेटी। देख मैं बनाती हूँ गुड़िया तेरे लिए।

[मैमूना सिसकते सिसकते जाकर बरामदे के झरोखे में खड़ी हो जाती है। बतूलन सब्जी की टोकरी लिये बाहर आती है और लोबिया काटने लगती है।]

खैरन—(उसका हाथ बटाते हुए) सुबह से बच्ची बाट देख रही है बतूलन बी। भला एक गुब्बारा इसके लिए भी ले आती तो......

बतूलन—बेगम ने तो दो ही लिये थे; लेकिन फरीद ने दोनो ले लिये।

खैरन—जरा प्यार ही कर लेती। बच्ची प्यार को तरस तरस जाती है। जा खड़ी हुई है झरोखे में (जैसे अपने आप) न जाने दिन भर वहाँ खड़ी खड़ी क्या ताका करती है ?

बतूलन—(दीर्घ निश्वास लेती है) कहा करते हैं, मा किसी की न मरे पर मम्मो को देखकर मैं दुआ किया करती हूँ—अल्लाह बाप किसी का न मरे।

खैरन—साजिद मियाँ तो आँखों पर बिठाये रखते थे अप इस बेटी को। एक बार जरा सी हरारत हो गई थी, सारी रात सिरहाने बैठे रहे थे। आँख तक न झपकी थी उन्होंने।

बतूलन—सुनती हूँ मम्मो की पहली साल-गिरह पर बड़ी भारी दावत की थी उन्होंने। अरशद मियाँ कई बार जिक्र किया करते हैं उस दावत का।

खैरन—(धीमे स्वर में) अरशद मियाँ और उनमें गहरी छनती थी। बचपन के दोस्त थे दोनों। बेगम तो अरशद से पर्दा तक न करती थी। सुनते हैं दोनों को मुहब्बत थी बेगम से, लेकिन साजिद जीत गए।

बतूलन—(अस्फुट शब्दों में) पर सुना है शादी कामयाब न थी उनकी। बेगम पछताती रहीं कि उन्होंने अरशद मियाँ को क्यों न चुना।

खैरन—(और भी धीरे से) अरशद सुन्दर थे, पर साजिद अमीर।

बतूलन—(उसी आवाज़ में) और बेगम न आप खुश रह सकीं न उन्हें खुश रख सकीं।

खैरन—यह तो अल्लाह ही जाने पर कभी तेवर तक न मैले देखे साजिद मियाँ के। इतना कारबार था, इतना कमाते थे, पर तबीयत में गरूर नाम तक को न था। मैं थी, नौकर थे, तो भी घर का मामूली से मामूली काम वे अपने हाथ से कर लेते। मम्मो से तो इतना प्यार करते कि अपने हाथ से खिलाते-पिलाते और नहलाते।

जब दफ्तर से आते, कुछ न कुछ ज़रूर ले आते। कन्धे पर बिठाये फिरा करते अपनी इस बेटी को, पर अब बेचारी .....

[गला भर आता है]

बतूलन—दिल के तो अरशद मियाँ भी दरिया हैं और घमड भी उनमें नाम को नहीं। कभी कोई बुरी बात नहीं कहते। फिर यही हैं जो इतनी देर बेगम का नाम जपते रहे। नहीं लड़कियों की कमी न थी? मौसा बहुतेरा कहते थे नुसरत के लिए, पर एक बार जो 'न' की तो 'हाँ' नहीं की। दो साल तक मौसी इनकी राह देखती रहीं। आखिर ब्याह दी लड़की माजिद के साथ। यूँ मम्मो से भी कम प्यार नहीं करते।

खैरन—(धीरे से) साजिद मियाँ जानते थे दोनों की मुहब्बत को, लेकिन क्या मजाल जो उन्होंने कभी आँख भी मैली की हो। धीरे धीरे बेगम ने अपनी दिलचस्पी कम कर दी उनमें। बेचारे सुबह आठ बजे जाते, तो रात पड़े घर वापस आते। बेगम या तो सैर को निकल जातीं या फिर सिनेमा देखने चली जातीं और अगर कभी घर पर भी होतीं तो सदा मुँह फुलाये बैठी रहतीं; इस पर भी साजिद सदा हँसते रहते। अपने सलूक मे जरा भी फर्क न आने देते। निगोड़ा जुकाम भी बेगम को हो जाता तो डाक्टरों के पीछे मारे मारे फिरते।

बतूलन—मैं पूछती हूँ साजिद बुरा न मानते इनकी गैर-हाजिरी का ?

खैरन—यह न होती तो मैमूना से दिल बहलाते (गला भर आता है) वही बच्ची जिसे अब्बा आँख की पुतली बनाये रखते थे अब......

[आमना फ़रीद को उठाये हुए प्रवेश करती है]

आमना—ले मैं अभी देती हूँ अपने बेटे को आम। बतूलन! कहाँ हैं वे आम? एक काटकर जरा फरीद को दे (उसे गले लगाकर झुलाते हुए) मेरे बेटे को सिरौली बड़े पसन्द हैं।

[आमों का नाम सुनकर मैमूना मुड़ती है और धीरे-धीरे कमरे में आती है]

आमना—और देख खैरन, मम्मो को दो फाँकों से ज्यादा न देना। फोड़े निकल आते हैं इसे। खून खराब है। (घृणा से) इसके अब्बा को भी निकल आते थे फोड़े। ध्यान रखा कर इस बात का खाना देते वक्त।

खैरन—खाया ही कब है खाना बेटी ने। लाके रखा था, पर एक दो कौर मुश्किल से खाये।

आमना—खाना नहीं खाया इसने? मेरे कमरे में भेज दे इसका खाना। नखरे तो देख चुड़ैल के (बतूलन लोबिया छोड़कर रसोईघर में जाने को उठती है) और देख बतूलन फरीद को आम देकर मेरे सैंडल को जरा ब्रश कर दे। अभी मैटनी देखने जाना है मुझे (मैमूना से) चल मम्मो।

[दोनों जाती हैं]

खैरन—(बतूलन से) बेगम ले गई हैं मम्मो को कि शोर न मचाये आमों को देखकर। हाय मेरे अल्लाह! अपनी औलाद से ऐसी नफ़रत।

आमना—(भीतर से) खैरन बी! यह मम्मो क्या करती रही है

आज ? सुबह बदला था फ़राक इसका, मैला चीकट कर दिया। इसे कभी तमीज न आयेगी।

[मम्मो का कान पकड़े आती है। बतूलन रसोईघर में चली जाती है]

—क्या मिट्टी में खेलती रही है दिन भर ? बिलकुल अपने अब्बा पर है। न बदन का होश न कपड़े का (रुककर) और देख यह फ़रीद का सूट भी बदल दे।

खैरन—सुबह ही तो बदला था बेगम।

आमना—मैला मालूम होता है, माजिद भी शायद आये वहाँ। मैं नहीं चाहती कि उसके सामने फरीद किसी भिखमंगे का लड़का दिखाई दे। तू तैयार कर दे उसे जल्दी। (मैमूना से) चल मम्मो।

[उसे ले जाती है।]

खैरन—(लम्बी साँस खींचती है) हे मेरे अल्लाह !

[बतूलन आम लाकर फ़रीद के सामने रखती है]

बतूलन—ले ये आम ! खा ले जल्दी। फिर सिनेमा देखने जाना होगा।

फ़रीद—मैं नहीं खाता।

बतूलन—क्यों भला ? देख तो कितने मीठे है आम। तेरे लिए खरीदे हैं नुमाइश से।

फ़रीद—ऊँ-ऊँ।

बतूलन—आखिर क्यों ?

फ़रीद—शीमा भी खायेगी।

बतूलन—शीमा चुड़ैल (**खैरन से**) खैरन बी, ज़रा देना आवाज उसे।

खैरन—(**दूसरे कमरे की चौखट पर रुककर**) शीमा... शीमा ..

[**शीमा शरमाती लजाती दाखिल होती है**]

फरीद—शीमो, आ आम खायें।

आमना—(**भीतर से**) खैरन ! ले आ खाना मम्मो के लिए जल्दी। और देख आम दो फाँको से ज़्यादा न रखना। कहना तो मानती नहीं, मेरा चुडैल। गदी रहती है। अब रही गंदी तो कुछ भी न दूँगी। माजिद आ जाये अगर...

[**खैरन रसोईघर में जाती है।**]

बतूलन—शीमा तुझे बड़ी अच्छी लगती है न फ़रीद और मम्मो ?

फ़रीद—(**आम खाता हुआ**) वह तो खैरन की बेटी है।

बतूलन—खैरन की बेटी है ! (**हँसती है**) और शीमा ?

फरीद—वह अम्मीं की बेटी है (**शीमा को आलिंगन में लेता हुआ**) तू मेरी बहिन है न शीमो। मम्मो से कुट्टी कर लेंगे हम। क्यो है न !

(**खैरन रसोई घर से तश्तरी में खाना लिये भीतर जाती है**)

शीमा—मम्मो से कुट्टी !

(**दोनों कहकहा लगाते हैं—सरल, अबोध कहकहा**)

खैरन—(**वापस आते हुए धीमी आवाज़ में**) यह बेगम माजिद का ज़िक्र क्या बार-बार किया करती है ! माजिद यह कहते हैं, माजिद

यह करते हैं, माजिद यह न कहे, माजिद वह न खयाल करे, बस आठों पहर माजिद के गुण गाया करती है !

बतूलन—(ड्राइंग रूम से सैंडल लाते हुए) नुसरत से पूछ के देखो उनके गुण, बेचारी आधी भी नहीं रही रो-रो के। अरशद मियाँ...

खैरन—(लोबिया काटने लगती है) अरशद मियाँ भी नहीं रोकते !

बतूलन—(सैंडल लेकर उन्हें ब्रश करते हुए) वह आप उदास-उदास से रहते हैं। मुझे तो रहम आता है उन्हे देखकर। जैसे उनमें कोई अपना अरमान ही नहीं, बिन पतवार की कश्ती से डोलते रहते हैं। न वह हँसी न .खुशी। घुटे-घुटे। दबे-दबे। नुसरत से कर लेते शादी तो अच्छे रहते।

खैरन—नुसरत से...

बतूलन—इतनी सुन्दर तो वह नहीं खैरन बी, पर गुणों की खान है। मजाल है जो दिल की बात चेहरे पर आने दे। घुट-घुट कर रह गई, पर अरशद मियाँ के सामने मन की गाँठ न खोली। मरती मर जायेगी पर उफ न करेगी।

खैरन—नुसरत बहुत अच्छी लड़की है।

बतूलन—जब भी कभी जाती हूँ मुस्कराकर मिलती है। अरशद मियाँ का हाल पूछती है पर उसकी वह दर्द-भरी मुस्कराहट (दीर्घ निश्वास लेती है) मालूम होता है जैसे दिल में उतरती जा रही है। मेरे तो कचोके लगते हैं खैरन बी !

खैरन—माजिद प्यार न करते थे नुसरत को ?

बतूलन—माजिद क्या प्यार करते ? दिल तो उनका कहीं और था। बेगम से पेंग बढ़ा रहे थे उन दिनों।

ख़ैरन—तब तो बात भी न करती थी बेगम। माजिद सौ बार बहाने से आ-आकर बैठते। अपनी इस भाभी के इशारे पर जान कुरबान करने को तैयार रहते। इनकी हर फ़रमाइश को पूरा करने के लिए बेचैन फिरा करते। उनकी आधी तलब तो इन भाभी साहिबा के तोहफ़ों की भेंट हो जाती, पर तब तो भाभी सीधे मुँह बात भी न करती थी उनसे।

बतूलन—तब देवर को कौन पूछता ! अरशद जो चढे हुए थे नज़र में।

ख़ैरन—और क्या ! मैमूना से कहा करती—तू तो अरशद चचा की बेटी है। वैसी ही शक्ल-सूरत, वैसी ही आदतें हैं तेरी—और यह कहकर फूली न समातीं।

बतूलन—(व्यंग्य से) और, अब फरीद माजिद चचा का लड़का बन गया है। उसकी शक्ल माजिद चचा सी है। उसे माजिद चचा की आदतें सिखाई जा रही हैं।

[आमना दाखिल होती है। ब्लाउज़ वही है किन्तु साड़ी बदली हुई है। बाल फिर से बनाये गये हैं। मुख पर पाउडर की हल्की सी तह जमी है और ओंठों पर सुर्खी की ताजी लकीर है।]

आमना—कर दिया ब्रश सैंडलों को ?

बतूलन—जी बेगम। लीजिए।

आमना—(सैंडल पहनते हुए) और बतूल, इस फरीद को

जल्दी तैयार कर इसके हाथ-मुँह धुलाकर सूट बदल दे (बतूलन उठती है) नहीं अब सूट रहने दे। बस इसके हाथ-मुँह धुला दे।

[बतूलन फ़रीद को रसोई में ले जाती है।]

—(उसी को सम्बोधित करके) और देख तू मेरे साथ चल। यह मचल गया तो सारे खेल का मजा किरकिरा हो जायगा और खैरन बी तुम मैमूना का खयाल रखना।

खैरन—इसे भी साथ ले जाती बेगम !

आमना—क्या अभी से बिगाड़ दूँ ! इसके अब्बा ने पहले ही इसकी आदतें क्या कम बिगाड़ रखी हैं !

खैरन—(लोबिया काटते हुए) आप बात-बात में नाहक़ उनका नाम...

आमना—खैरन... !

खैरन—मैं तो चुप रहने की बहुत कोशिश करती हूँ, लेकिन जब हर बात में उनका नाम...

आमना—खैरन—!

खैरन—मुझसे यह सब कुछ नहीं सुना जाता। जो मेरी गोद में पलकर जवान हुआ, जिसे बचपन मे अपना दूध तक पिलाया, जो इतना नेक और...

आमना—खै—रन !

खैरन—और फिर उसकी यह बच्ची। रेगिस्तान में भटकनेवाली नन्हीं सी जान की तरह इस घर में डोलती फिरती......

[बतूलन फ़रीद का हाथ मुँह धुलाकर ले आती है। तौलिये से उसके हाथ मुँह पोंछकर उसके बालों को सँवारती है]

आमना—खैरन ! मैं देखती हूँ तू मैमूना की आदतें बिगाड़ रही है। मैंने तेरे बुढ़ापे का खयाल करके तुझे छोड़ना मुनासिब नहीं समझा, लेकिन तुझे दूसरा घर देखना पड़ेगा। (बतूलन से) फरीद को ले जाकर मोटर मे बिठा। मैं अभी आई।

बतूलन—(तौलिया खूँटी पर टाँगते हुए) चलो फरीद मियाँ

[दोनों जाते हैं]

आमना—पानी मे रहकर मगर से बैर अच्छा नही खैरन बी। अपना भला-बुरा सोच ले। मैमूना तुझे ही प्यारी नहीं, मेरी भी बच्ची है।

[आमना तेज़ तेज़ चली जाती है]

खैरन—(दीर्घ निश्वास लेकर) आह ! अगर वह तुम्हारी बच्ची होती ! वह अपने मरहूम* अब्बा की बच्ची है और उसकी मौत के बाद मेरी बच्ची है।

[धीरे-धीरे डरी डरी सी मैमूना कमरे से बाहर निकलती है]

खैरन—(आगे बढ़कर उसे गले से लगाते हुए) आ मेरी यतीम, बेआसरा बच्ची। अपनी इस बूढी माँ की तरह तू भी बेआसरा और बेबस है।

[प्यार से उसे छाती से लगाती है, उसके बालों पर हाथ फेरती है, बाहर से मोटर के स्टार्ट होने की आवाज़ आती है]

—तूने आम खाया क्या ? (उसे छाती से भींचती है) आ तो मैं तुझे देती हूँ आम !

---

* मरहूम = दिवंगत

मैमूना—नहीं, मैं नहीं खाती आम।

ख़ैरन—क्यों?

मैमूना—आम खाने से फोड़े निकलते हैं।

ख़ैरन—(उसे फिर छाती से लगाती हुई) मेरी बच्ची को तो आम खाने से फोड़े निकलें और उस पाजी को उनसे आराम आये, जिसका जिस्म फोड़ों से कोढ़ियों की तरह अटा रहता है। ले तो मैं तुझे लाकर देती हूँ आम। देखूँ तो किस तरह निकलते हैं फोड़े।

[रसोई घर से आम लाकर उसे देती है]

—ले खा तो मेरी बेटी।

मैमूना—नहीं।

ख़ैरन—आखिर क्यों?

मैमूना—अम्मी मारेगी।

ख़ैरन—कौन तेरी अम्मी! तेरी अम्मी तो मैं हूँ। ले खा।

[फाँक उसे देती है। अरशद आता है]

अरशद—(खिन्न, म्लान, विषादमयी हँसी के साथ) अपने इस बेटे को भी तो आम खिलाओ ख़ैरन बी!

ख़ैरन—ओह! अरशद मियाँ! इतनी जल्दी वापस आ गये आप।

[मैमूना डरकर भीतर कमरे में चली जाती है]

ख़ैरन—लो भाग गई मैमूना तुम्हें देखकर (ज़रा सा हँसते हुए) सुबह से बेटी ने कुछ खाया-पिया न था। बेगम आम लाई थी, मैंने सोचा...

अरशद—(उदास हँसी के साथ) तुम्हारे इस बेटे ने भी तो सुबह से कुछ खाया-पिया नहीं।

खैरन—क्या कहते हो अरशद मियाँ! तुम तो दावत में गये हुए थे।

अरशद—दावत! (हँसता है) वह तो आमना की थी। मैं तो यों ही तुफैलियों में चला गया था।

खैरन—कैसी बातें कर रहे हो!

अरशद—तुम न समझोगी।

खैरन—बेगम तो कहती थीं आप सिनेमा में उनकी राह देख रहे हैं। वह तो अभी गई हैं।

अरशद—मैंने उसकी कार को जाते हुए देखा था। लेकिन वहाँ माजिद होगा। मैंने उसे फोन कर दिया था।

खैरन—मालिक! आप क्या कह रहे हैं!

अरशद—माजिद आमना से मुहब्बत करता है और वह भी अब उससे नफरत नहीं करती।

खैरन—सरकार! आप और बेगम में भी तो...

अरशद—मुहब्बत थी, यही कहना चाहती हो न तुम। लेकिन इस मुहब्बत के दरम्यान साजिद आ गया। मैं जवानी की अपनी उसी सीधी-सादी, पागल मुहब्ब के फरेब में हवाईमहल बनाता रहा। मैं आमना को हमेशा उसके पहले रूप में देखता रहा। मुझे क्या मालूम—साजिद को अपनी मुहब्बत न देनेवाली आमना, उसकी दौलत को अपना दिल दे बैठी है। साजिद को उसने छोड़ दिया, उसकी दौलत को न छोड़

सकी ; (जैसे अपने आप) वह अरशद को—गरीब बेपरवाह और आजाद अरशद को—सोसाइटी के अदब-आदाब सिखाकर पालतू कुत्ते की तरह साथ साथ लिये फिरना चाहती है (हँसता है) वह उसे चूम लेगी, उसे अपनी बाँहों में भींच लेगी, लेकिन उसकी नज़रों में उस की वक़अ़त पालतू कुत्ते से ज्यादह न होगी।

खैरन—(रुँधे हुए गले से) सरकार !

अरशद—पहले अगर वह मुझसे शादी करती तो मेरी इस बेपरवाही से नफ़रत न करती, वह इससे प्यार करती। मेरी हस्ती में अपनी हस्ती मिला देती। लेकिन अब (लम्बी साँस लेता है) उसने अपनी अलग हस्ती बना ली है—धन-दौलत के बनावटी और बेजान अदब-आदाब की लहरों पर तैरनेवाली हस्ती ! मेरी बेपरवाही से अब वह उकता जाती है। वह मेरा सुधार करना चाहती है। पालतू कुत्ते की तरह मुझे साथ साथ लिये फिरना चाहती है। उसे शाइस्ता*, मुहज्ज़ब†, अमीर माजिद मुबारिक रहे। वह फरीद को शौक से माजिद चचा जैसा बनाये। अरशद अपनी अलग दुनिया बसा लेगा।

खैरन—लेकिन मैमूना (गला भर आता है) मेरी गरीब, मासूम‡ बच्ची ! वह तो घुटकर मर जाएगी इस फजा में मालिक।

अरशद—मैमूना...

खैरन—मैं तो अभी तुम से यह कह रही थी कि मुझसे यह सब नहीं देखा जाता। मेरी ग़रीब बच्ची इस घर में घुटी जा रही है।

अरशद—मैं खुद घुटा जा रहा हूँ।

खैरन—मैं इसका यह हाल नहीं देख सकती। मुझे छुट्टी दो।

---

* शाइस्ता = संस्कृत। † मुहज़्ज़ब = सभ्य। ‡ मासूम = भोली।

अरशद—छुट्टी ! (हँसता है) मैं खुद छुट्टी ले रहा हूँ ।

खैरन—अम्मा इसे अपने पास फटकने नहीं देती । तुम्हारे पास वह आती नहीं । उदास उदास, खोई खोई सी फिरती रहती है । कभी इस खिड़की में, कभी उस झरोखे में खड़ी न जाने क्या क्या सोचती रहती है । इन दो बरसों में आधी भी तो नहीं रही ।

[मैमूना दूसरे कमरे से झाँकती है, फिर कन्नी काटकर बाहर निकल जाना चाहती है

—यह देखो, फिर कन्नी काटकर निकल चली ।

अरशद—(उसे पकड़कर अतीव स्नेह से) मम्मो, इधर तो आ बेटी । तू मुझसे इतना डरती क्यों है ! (उसे गोद में लेकर) तू मेरे सामने से चोरी-चोरी क्यों निकल जाती है ! मुझसे कन्नी क्यों कतराती है ! (उसे चूमता है) मैं तेरा अब्बा हूँ (उसके बालों पर हाथ फेरता हुआ उसे गले लगाता है) बता तू किस की बेटी है मेरी मम्मो ?

मैमूना—(चुप)

अरशद—(उसे प्यार करता हुआ) किसकी बेटी है मेरी अच्छी मम्मो ?

मैमूना—मैं खैरन बी की बेटी हूँ ।

अरशद—(उसे आलिंगन में भींचता हुआ) तू मेरी बेटी है । साजिद की नहीं, खैरन की नहीं, आमना की भी नहीं । तू अपने अब्बी की बेटी है (दीर्घ निश्वास लेता है) अपने अब्बी के बेपरवाह आज़ाद दिनों की बेटी ! अब तू भी उसकी तरह घुट घुटकर रह गई है । लेकिन मैं अपनी बेटी को जरा भी तकलीफ न होने दूँगा । (उठ खड़ा होता है

और मैमूना को अपनी बाँहों में उठाकर हृदय से लगा लेता है) अपने अब्बी की बेटी है न मेरी अच्छी मम्मो।

[मैमूना पहले झिझकती है फिर अपने नन्हें नन्हें हाथों को अरशद की गर्दन से लिपटा देती है]

मैमूना—अब्बी!

(पर्दा तत्काल गिर जाता है)

चुम्बक

पात्र

गोपा, सरिता, बाबा, दूलो, इक्केवाला, गौतम

स्थान—

मध्य पंजाब का एक गांव

समय—

दिन का तीसरा पहर

[सेशन जज की पदवी से रिटायर होकर गोपा के बाबा ने अपने गाँव 'बनीके' के बाहर, अपने आमों के बाग में सड़क के किनारे एक छोटा सा बंगला बना लिया है। जीवन का सूर्य अस्त होने को है और वह चाहता है कि मीठी मीठी बयार की थपकियों से हलके फुलके बादलों की चादर ओढ़ कर सो जाये ! कोलाहल गोपा के बाबा को पसन्द नहीं। रिटायर होने के बाद वे एक बार भी नगर नहीं गए—गाँव की सड़क पर इक्के चलते हैं, उससे परे जरनैली सड़क पर मोटरें बसें और तनिक और आगे अटारी स्टेशन पर रेलगाड़ियां; और जरूरत का सब सामान वहीं घर-बैठे प्राप्त हो जाता है। किन्तु गोपा, जो बी० ए० की परीक्षा देने के बाद अपने अवकाश के दिन बिताने (कम से कम अपनी सहेलियों से उसने यही कहा है) अपने बाबा के पास बनीके चली आई है, कुछ ही दिनों में घबरा उठी है।

पर्दा उठने पर हम गोपा और उसके बाबा को ड्राइंग रूम में बैठे हुए देखते हैं। यह ड्राइंग रूम नागरिक और ग्रामीण रुचियों के मिलान का एक सुन्दर चित्र उपस्थित करता है। इसमें कौच भी हैं, मेज-कुर्सियां भी, लेकिन साथ ही बायीं दीवार के साथ एक तख्त भी बिछा है, जिस पर गावतकिया लगा हुआ है।

सामने की दीवार में खिड़की, अंगीठी और एक दरवाज़ा है—खिड़की दायीं ओर को है और इसमें से आमों के तने और घनी छायाएं छोटे छोटे पौधों की हरियाली से मिल कर आंखों को एक विचित्र शीतलता प्रदान करती हैं। अंगीठी के ऊपर बहुत सा सामान पड़ा है, जिसमें मिट्टी के खिलौने, चीनी के फूलदान और दूसरी चीज़ों के अतिरिक्त तम्बाकू का एक बर्तन और सिगरेट की एक डिबिया भी पड़ी है। रहा दरवाज़ा, सो वह एक दूसरे कमरे को जाता है, जो इस समय गोपा के सोने और पढने के कमरे का काम देता है।

दायीं (अभिनेताओं के) ओर की दीवार के परले कोने में एक दरवाज़ा है जो बाहर आँगन को जाता है।

बायीं (अभिनेताओं के) ओर की दीवार में एक बड़ी खिड़की और एक दरवाज़ा है। खिड़की में से अटारी से (बनीके के सामने से हो कर) चौगावा को जाने वाली सड़क दिखाई देती है और दरवाज़ा बाहर को खुलता है।

पर्दा उठते समय बाबा सामने दीवार की खिड़की के पास मोंढे पर बैठे मज़े से हुक्का पी रहे हैं। गोपा तख्त पर पेट के बल लेटी हुई पुस्तक पढ़ रही है। पाव उसके ऊपर को उठे हुए हैं और वह उन्हें धीरे धीरे हिला रही है।

पर्दा उठने के कुछ क्षण बाद तक बाबा के हुक्के की गुड़गुड़ाहट सुनाई देती रहती है। सामने खिड़की में आमों की छायाएँ धीरे धीरे गहरी होती जाती हैं, प्रकाश की किरणें मन्द पड़ने लगती हैं और पृष्ठभूमि में वृक्षों के 'शां...शां' का गहर-गम्भीर शब्द सुनाई देता है। बाबा चौंक कर उठते हैं।]

बाबा—(घबराई हुई आवाज़ में, बायीं ओर की खिड़की में देखते हुए) गोपा...गोपा...

गोपा—(उसी प्रकार लेटे हुए पुस्तक पर से दृष्टि हटा कर) क्या बात है बाबा ?

बाबा—(चिढ़ कर) क्या बात है बाबा ? क्या बात है बाबा ? देखती नहीं हो, सामने आकाश के तेवर बदल गए हैं, धूल से वायु-मडल सन गया है। पछी घोंसले छोड़ कर आतुर घूम रहे हैं।—

(पृष्ठ-भूमि मे वृक्षों की 'शा शा' की ध्वनि और भी ज़ोर पकड़ती है। दरवाजों और खिड़कियो के किवाड़ खड़खड़ाते हैं और कमरे में हल्की सी धूल छा जाती है।)

—बाग के वृक्ष चीख उठे हैं, किवाड़ खड़खड़ाने लगे हैं, (नकल उतारते हुए) क्या बात है बाबा ? काली आँधी आ रही है, काली !—

(गोपा हाथ में पुस्तक लिये उठ कर दरवाज़ो और खिड़कियो के किवाड़ लगा देती है।)

...यह रौशनदान भी बन्द कर दो !

(गोपा बड़बड़ाती हुई रौशनदान की रस्सी खोल देती है और मुड़ कर कमरे में इधर उधर देखती है।)

गोपा—कमरे मे धूल ही धूल भर गई। मेरी तो सास जैसे घुटी जा रही है।

(खिड़की की ओर, उसे खोलने के विचार से, बढ़ती है।)

बाबा—(उसे रोक कर) कुछ क्षण चुपचाप बैठ जाओ। इस पुस्तक को छोड़ दो। आधी का कोप शात हो लेने दो, फिर खिड़की

छोड दरवाजा खोल लेना। नहीं तो पन्द्रह दिन लगातार झाड़ने-बुहारने से भी कमरा साफ न होगा।

(वाहर आंधी का वेग बढ़ जाता है।)

गोपा—(कौच में धँसती हुई) यह कम्बख्त कैसा मौसिम है? सारा सारा दिन आग बरसती है और धूल छाने लगती है तो सूरज भी चाँद की पीली सी टिकिया दिखाई देता है—सुबह धूल, शाम धूल—नाक और कंठ सूख सूख जाते हैं। मैं तो ऊब गई इन आँधियों और झक्कड़ों से।

(खिड़की के शीशे पर पानी के कुछ छींटे पड़ते हैं।)

बाबा—बस अब पावस आ गया है। धरती की यह मस्ती उतर जाएगी।

गोपा—(उठ कर खिड़की की ओर जाते हुए) खाक आ गया है पावस। इन चार छींटों से क्या होता है?

बाबा—नहीं, यह बरस के जाएगा, (प्रसन्नता से) और यह विशाल मरुस्थल धान, कमाद और मकई की हरियाली से लहलहा उठेगा।

गोपा—(सहसा चौंक कर) बाबा...बाबा...

बाबा—(उसकी ओर जाते हुए) क्या बात है?

गोपा—(हँसती है) देखिए ना, (फिर हँसती है) देखिए ना इस इक्के को—

(बाबा उसके पास जा खड़े होते हैं)

—(करुणा से) किसी गरीब के छप्पर की भाँति इसकी छत उड़

गई है, और यह घोड़ा—(हँसती है) कम्बख्त किसी जिद्दी अंधे की तरह आंधी-पानी को चीरता हुआ चला आ रहा है। (सहसा गम्भीर हो कर) अरे इसमें तो कोई लड़की है!

बाबा—(उसके कंधे के ऊपर से देखते हुए) निपट अकेली! न जाने किस मुसीबत की मारी बेचारी इस तूफान में अकेली घर से निकल पड़ी है.. दरवाज़ा खोल दो बेटा, इसकी आकुल निगाहें आश्रय खोज रही है।

गोपा—(दरवाज़ा खोल कर उसे पुकारती है) इधर आ जाओ बहिन, इधर चली आओ!

(भीग जाने के कारण शरीर से चिमटी हुई साड़ी, भीगे बिखरे बाल, एक हाथ में बैग थामे सरिता प्रवेश करती है।)

सरिता—ओह! (सुख की लम्बी साँस लेती है) बड़ा आभार मानती हूँ आपका, (तनिक कांपती है और हँसती है) मुझे तो सर्दी लगने लगी है।

बाबा—गोपा, तुम इन्हे बिठाओ, मैं इतने में दूलो से चाय बनाने को कहता हूँ। (सरिता से) बैठो बेटी, इसे अपना ही घर समझो!

(आँगन के दरवाज़े से चले जाते हैं।)

गोपा—(सरिता से) आइए, चली आइए। यह कपड़े बदल डालिए, चीकट हो रहे हैं।

सरिता—(गोपा के साथ भीतर कमरे को जाते हुए) कुछ वर्षा हो रही है। लगता है जैसे आकाश के किसी अनजाने बैरिज के बांध टूट गए हैं। मैं तो पलक झपकते शराबोर हो गई।

(कमरे में चली जाती है। गोपा बाहर रहती है।)

गोपा—(नौकर को आवाज़ देती है) दूलो, दूलो !

दूलो—(बाहर से) जी बीबी जी !

गोपा—जरा तौलिया लाना जल्दी। (सरिता से) कपड़े आप कौन से पहनेंगी—साड़ी लाऊं या शलवार ? जो कहिए, वही लाऊं।

सरिता—(भीतर से) धन्यवाद ! कपड़े मेरे बैग में हैं।

गोपा—इस आँधी तूफान मे आप कहाँ जा रही हैं ?

सरिता—प्रीतनगर !

गोपा—(आश्चर्य से) प्रीतनगर ? लेकिन वह तो यहाँ से भी सात मील आगे है।

सरिता—अब तो केवल सात मील रह गया है, मैं तो मिन्टगुमरी से आई हूँ।

गोपा—(और भी चौंक कर) मिन्टगुमरी से, निपट अकेले ?

सरिता—अकेलेपन से मुझे डर नहीं लगता।

गोपा—और इस निर्जन सड़क पर आप अकेली सफर कर रही हैं ?

सरिता—(हँस कर) मैंने इससे कहीं अधिक निर्जन सड़कों पर अकेले सफर किया है।

(इक्केवाला दरवाज़ा खटखटाता है।)

इक्केवाला—बाबाजी, बाबाजी......

(गोपा जाकर दरवाज़ा खोलती है, कल्लू, इक्केवाला, चौखट में आ जाता है।)

गोपा—अरे कल्लू तुम हो, तुम्हारे इक्के पर आई हैं ये ? कहो क्या बात है ?

इक्केवाला—बाबाजी.. (सिर कुरेदने लगता है).. बाबाजी कहाँ हैं ?

गोपा—क्या बात है ?

इक्केवाला—जी कोई बीड़ी मिल जाती तो (फिर सिर कुरेदने लगता है)

गोपा—बीड़ी ? (हँसती है) बीड़ी तो यहाँ कोई नही पीता।

इक्केवाला—तो फिर सिगरेट ही मिल जाय ! मेरी जेब मे तो (जेब मे हाथ डाल कर बाहर निकालते हुए) सब कुछ पानी हो गया है।

गोपा—सिगरेट.. .. मैं देखती हूँ..... अभी परसो एक मेहमान आए थे, डिबिया यही भूल गए हैं। और तो कोई पीता नहीं यहाँ।

(अंगीठी पर ढूँढ कर सिगरेट की डिबिया लाती है और एक सिगरेट निकाल कर इक्केवाले को देती है।)

गोपा—यह लो। बाबा तो हमारे हुक्का पीते हैं। सिगरेट उन्हे अच्छा नही लगता।

इक्केवाला—जी दियासिलाई...

गोपा—(नौकर को आवाज़ देती है) दूलो दूलो...

दूलो—(आँगन के दरवाजे में से) जी मै यह रहा। यह लीजिए तौलिया।

गोपा—(उसकी ओर जाते हुए) अब लाया है तौलिया कम्बख्त ! ला, दे ! और जा भाग कर दियासिलाई की डिबिया ले आ। (जाकर

तौलिया कमरे के अन्दर फेंकती है) यह तौलिया ले लो बहिन ! बदन पोंछ डालो ! (फिर इक्केवाले के पास जा कर) अभी आती है दिया-सिलाई । तुम जरा अन्दर आ जाओ । इस तरह बौछार आ रही है । और दरवाजा बन्द कर दो—

(इक्केवाला अन्दर आकर दरवाज़ा बन्द कर देता है ।)

—तुम कैसे चल पड़े इस समय ? रात कहाँ रहोगे ?

इक्के वाला—जी मैंने तो लाख इनकार किया था, लेकिन यह मानती ही न थीं । कहने लगीं—"मैं वापस नहीं जा सकती । सवा की जगह दो रुपये दूंगी, जैसे भी हो ले चल ।' मैंने कहा, "बीबीजी, दस मील है ।" कहने लगीं, "कोई परवा नहीं, तू ले चल ! मैं इसी गाड़ी मिण्टगुमरी से आई हूँ । वापस अब नहीं जा सकती ।" मैंने सोचा—चलो रात प्रीतनगर ही रह लेंगे । सवारियाँ तो सुबह उधर से मिल ही जाती हैं । फिर अटारी के पहलवान ने भी कहा, "जाओ, छोड़ आओ जाकर ! ये कुछ और इनाम दे देंगी ।" पहलवान की बात, आप जानती हैं, हम कैसे टाल सकते हैं ? अड्डे का मालिक जो ठहरा ।

गोपा—पर इस समय इन्हें अकेले आने का साहस कैसे हुआ !

इक्के वाला—जी इनके साहस की न पूछिये । एक शाम रेनाला से ओकाड़ा तक, ग्यारह मील अकेली तांगे पर चली गई थीं ।

गोपा—ग्यारह मील !

इक्के वाला—जी, बता रही थीं कि रेनाला किसी काम से गई थीं । वहा से चलते समय देर हो गई । रेल-गाड़ी का समय निकल

गया था और लारी कोई मिली नहीं। इन्हें सुबह स्कूल पहुँचना था। बस तांगा लेकर चल पड़ी।

दूलो—(आंगन के दरवाजे से दियासलाई फेंकता हुआ) यह दियासलाई रही बीबीजी!

(गोपा दियासलाई की डिबिया उठा कर इक्के वाले को देती है और वह सिगरेट सुलगाता है।)

इक्के वाला—(एक दो कश लगा कर अपनी बात जारी रखते हुए) रास्ते में एक लारी मिली जो सामान से भरी हुई थी। बेधड़क तांगे से उतर कर इन्होंने लारी रोक ली। लारी में सामान लदा था और तीन आदमी बैठे थे। ये बेझिझक लारी में सवार हो गईं। न इन्हें उस निर्जन से भय आया, न उस सामान से भरी हुई लारी में तीन असभ्य पुरुषों के साथ अकेले सफर करने से।—शायद वहां के डिप्टी कमिशनर इनके रिश्तेदार हैं।

(ज़ोर से हवा का एक झोंका आता है और किवाड़ खुल जाते हैं)

गोपा—कल्लू, तुम उधर आंगन के बरामदे में चले जाओ। यहां तो बौछार आ रही है।

इक्केवाला—(जाते जाते मुड़कर) जी, एक सिगरेट और मिल जाता। भगवान आपका भला करे। (सिर कुरेदता है) आपके बाबा तो हुक्का पीते हैं।

गोपा—(हँसते हुए) ले!

(इक्के वाला चला जाता है। गोपा दरवाज़ा बन्द करके चटखनी लगा देती है। सरिता कपड़े बदल कर बाहर आती है।)

सरिता—(हँसते हुए) यह शलवार-क़मीज मैं रात को पहनती

हूँ। ज्यादा कपड़े साथ लाई नही और यह वर्षा कम्बख्त.. (हँसती है) एक साड़ी तो मैंने वहाँ पहनने के लिए रख छोड़ी है।

गोपा—साड़ी आप मुझसे ले लेती।

सरिता—धन्यवाद ! काम तो चल गया, नाइटसूट......

गोपा—कौन जानता है नाइट और डे सूट देहात मे ! (कौच की ओर संकेत करके) बैठिये ! मैं चाय के लिये कह आऊ।

(आगन की ओर जाती है। सरिता कौच पर बैठकर तिपाई पर बांहें फैला कर उनमे सिर रख देती है।)

गोपा—(नौकर को आवाज़ देते हुए) जल्दी चाय लाओ दूलो। (वापस आते हुए, सरिता को मेज पर बाहे फैलाये हुए देख कर) क्यां. क्या बात है ?

सरिता—कुछ नहीं, थक गई हूँ। नीद सी आ रही है। (उठ कर अंगड़ाई लेते हुए) यह वर्षा अभी कम नहीं हुई।

गोपा—मूसलाधार पड़ रही है।

सरिता—और मुझे आज वहाँ अवश्य पहुँचना है।

गोपा—(तनिक हँस कर) अभी इक्के वाला कह रहा था कि मिन्टगुमरी के डिप्टी कमिशनर आपके रिश्तेदार है।

सरिता—(हँस कर) जब कही निर्जन मे मुझे अकेले सफर करना पडता है तो वहाँ के अफसर मेरे रिश्तेदार बन जाया करते हैं।

(दोनो ठहाका मार कर हँसती हैं। नौकर चाय की ट्रे लाता है।)

गोपा—इधर रख दे तिपाई पर। (सरिता से) आपके साहस की दाद देती हूँ भई! मैं होती तो अटारी ही से मुड़ जाती।

(नौकर तिपाई पर चाय की ट्रे रख देता है।)

सरिता—एक बार चल कर मुड़ना मैंने नही सीखा।

गोपा—(प्यालियो में चाय उँडेलते हुए) वहाँ आप सूचना ही भिजवा देती। कोई आपको लेने अटारी आ जाता।

सरिता—मैं बिना सूचित किए वहाँ पहुँचना चाहती हूँ।

गोपा—चीनी ?

सरिता—डेढ़ चम्मच !

गोपा—(चीनी डालते हुए) भई तुम्हा.. आपकी बाते मेरी समझ में नही आती।

सरिता—(उठ कर कौच का एक चक्कर लगाते हुए) मै उन्हे surprise visit देना चाहती हूँ। उन्हे तो पता भी नहीं। मै अचानक जा पहुँचूगी तो चकित रह जायँगे।

गोपा—तुम .....क्षमा कीजिये, मै भूल जाती हूँ 'आप' कहना।

सरिता—(हँसते हुए) 'आप' की यहाँ कोई जरूरत नहीं।

(दोनो हँसती हैं)

गोपा—(प्याली को उसकी ओर सरकाते हुए) तुम किनसे मिलने जा रही हो ?

सरिता—क्या करोगी यह पूछ कर ?

गोपा—क्या वहाँ तुम्हारे भाई हैं, कोई सगे सम्बन्धी है या तुम्हारे . ...

सरिता—(फिर कौंच पर बैठते हुए चाय का कप हाथ में लेकर) नहीं नहीं, इनमें से कोई भी नही।

गोपा—फिर!

सरिता—(चुस्की लेते हुए) तुम्हें यह बात कुछ विचित्र मालूम होगी।

(चाय पीती है, किन्तु चीनी अभी तक घुली नहीं—इसलिए फिर रख देती है।)

गोपा (उत्सुकता से) फिर भी... . फिर भी...

सरिता—(चम्मच से चीनी हिलाते हुए) वहाँ एक कवि हैं, मुझे उनमें प्रेम है।

गोपा—(चौंक कर) कवि......प्रेम ..

(सरिता प्याली हाथ मे लिये हुए उठ कर कमरे का एक चक्कर लगाती है। फिर आकर तिपाई पर कुहनियाँ टेक कर चाय पीती है।)

सरिता—हाँ, मुझे उनसे प्रेम है—

(प्याली ख़त्म करके मेज पर रख देती है और पूरी अंगड़ाई लेती है।)

—यह कम्बख्त इक्के की सवारी .....मेरा तो अङ्ग-अङ्ग दुखने लगा है। कल रात जागती रही हूँ।

गोपा—क्यों?

सरिता—नींद नहीं आई एक्साइटमेंट (excitement) के मारे! और फिर लम्बा सफर—आँखें बन्द सी हुई जा रही हैं!

गोपा—(दूसरी प्याली बनाते हुए) एक कप और पियो, तबीयत खिल उठेगी... . तो तुम्हे उनसे प्रेम है ?

सरिता—या यों कह लो कि उन्हे मुझसे प्रेम है। किन्तु आज मेरे वहाँ पहुँचने की उन्हे कल्पना तक न होगी। एक पत्र में उन्होंने लिखा था......कहीं दो-चार दिन के लिए आ जाओ तो......

गोपा—और तुम उठ भागीं।

सरिता—उन्हे पता भी नहीं।

गोपा—लेकिन...

सरिता—उन्होने छुट्टियों मे आने को लिखा था। न जाने उनके पत्रों को पढ़ कर मुझे क्या हो जाता है ? (प्याली हाथ में लिये लिये ही, जैसे किसी दूसरी दुनिया में पहुँच जाती है) वे बहुत दुखी और उदास रहते हैं। अभी कल ही उनका पत्र मिला था (रुँधे हुए स्वर में) 'तुम हाल पूछती हो ?' उन्होने लिखा, 'बस जीवन का चक्कर चल रहा है। घूमे जा रहा है। मेरी बेकली या उदासी के लिये यह रुकेगा नहीं। लेकिन सरिता, यह अजीब बात है कि मै कभी कभी उसे एकदम निश्चल पाता हूँ—ठीक उसी प्रकार जैसे यह विशाल धरती घूम रही है और हमे पता भी नहीं चलता। फिर कभी कभी लगता है, जैसे जीवन एक अथाह सागर है—ठहरा और रुका हुआ—और मेरी! विवश घड़ियाँ असहाय इसमे हाथ पैर मार रही हैं। (जल्दी जल्दी चाय के दो घूंट भरती है) सोचती हूँ—जब मैं अचानक वहाँ जा पहुँचूँगी और उन्हे पता चलेगा कि मैं मिन्टगुमरी से इतनी दूर—नदी नाले, वन-वीराने पार करती हुई, आँधी और पानी मे दस मील का लम्बा, ऊबड़-खाबड़ मार्ग केवल एक इक्के द्वारा पार करके आई हूँ तो.. . तो.. ...

(उल्लास से कमरे का एक चक्कर लगाती है, फिर सहसा रुक कर और कौच की पीठ पर कुहनियाँ टेक कर)

—उनकी निराश और उदास आँखों मे आश्चर्य भरे उल्लास के डोरे दौड़ जाएँगे।

(प्याली ख़ाली करके मेज पर रख देती है)

—(अँगड़ाई लेकर) ओह! यदि यह कम्बख्त वर्षा कही थम जाए !

गोपा—किन्तु मार्ग तो अब इक्के के बस का न रहा होगा। चौंगावा से आगे तीन मील बिल्कुल कच्चे हैं।

सरिता—पानी थम जाए तो मुझे कोई नही रोक सकता। इक्का चौंगावा ही मे छोड़ कर मै इक्केवाले के साथ तीन मील पैदल चली जाऊंगी, किन्तु पहुँचूंगी मैं आज अवश्य। (जैसे अपने आप से), उनकी आकुल और उदास घड़िया वेदना के शीत से निष्प्राण हैं, क्या मैं अपने प्रेम की उष्णता से उनमे प्राण न भरूँगी ? अकेलेपन का बोझ उनके हृदय को पीसे जा रहा है। क्या मैं न जाऊगी उनका बोझ हलका करने, उनके दुख को बटाने ?

गोपा—(हँस कर) तुम रोमैंटिक (romantic) हो !

सरिता—यही एक बार उन्होने कहा था।

गोपा—आप दोनों पहले पहल कब मिले ?

सरिता—कभी नही...मेरा मतलब है कि यही बात उन्होंने एक बार लिखी थी, नहीं वे तो मुझे पहचानते तक नही। हमारा परिचय केवल पत्रो तक ही सीमित है।

गोपा—(और भी चकित होकर) पहचानते तक नही, तो फिर तुम .

सरिता—मैंने उन्हे देखा है। एक बार लाहौर की एक सभा मे उनकी कविता सुनी थी—कितना अच्छा गाते हैं वे। कितनी वेदना है उनके करुण मधुर स्वर में। वह कविता उन्होंने अपनी स्वर्गीया पत्नी को सम्बोधित करके लिखी थी। (घूमते घूमते दायी ओर की खिड़की में जा खड़ी होती है और क्षण भर बरसते हुए बादलो को चुपचाप देखती है फिर मुड़ कर) मैं उस समय बी० ए० मे पढ़ती थी। कई दिनो तक मेरे कानो मे उनका दर्द-भरा स्वर, उनकी पीड़ामयी पुकार गूँजती रही। उस कविता का एक एक शब्द मेरे मस्तिष्क मे चक्कर लगाता रहा। (कौच के पास आ जाती है) फिर एक दिन मैंने उन्हे माल रोड पर देखा। (सामने, जैसे किसी दूसरी दुनिया में, देखते हुए) बाल बिखरे हुए थे, माथे पर पसीने की बूंदे चमक रही थीं, और धूप के ताप से बेखबर, सिर झुकाए, शिथिल, थकित, अपने विचारो मे निमग्न, वे फुटपाथ के किनारे किनारे चले आ रहे थे—न जाने उनकी कल्पना उस समय अभेद्य प्राचीरो को पार करके कहाँ से कहाँ जा पहुँची थी! (जैसे इस दुनिया में वापस लौट आती है) उन्हे अपनी सगिनी से अथाह प्यार था। उसकी मृत्यु ने उनके हृदय को एक असीम सूनेपन से भर दिया है।

गोपा—(जैसे सब कुछ जान गई हो) और फिर तुमने उन्हे पत्र लिखा।

सरिता—(धीरे धीरे कमरे में टहलते हुए) नही! इसके बाद तो मैंने बी० टी० की परीक्षा दी। उनकी और भी कविताएँ छपीं। वे सब मेरी डायरी मे लिखी हुई हैं। (अचानक रुककर) तुमने शायद उन्हे नहीं पढ़ा—कितनी करुणा, कितना विषाद, कितनी पीड़ामयी तरलता है उनकी एक एक पंक्ति में—मैं और असीमा पढते पढ़ते रो पड़ती

थी—पुलक और आह्लाद भरे बीते दिनों की सूनी समाधि पर उनका हृदय लोहू बन बन कर बहता है—'प्रेम का कैसा अदम्य उफान छिपा हुआ है इस व्यक्ति के हृदय में'—हम सोचा करती थीं। और असीमा तो......

गोपा—बहिन है तुम्हारी असीमा ?

सरिता—नहीं, मेरी सहेली है। बचपन से हम दोनों साथ पढ़ती आई हैं। वह सारा सारा दिन पागलों की भाँति गाया करती थी उन कविताओं को। (धीमे स्वर में धीरे धीरे) बी० टी० करने के बाद मैं हेडमिस्ट्रेस हो कर ओकाड़ा चली गई और असीमा अपनी माँ के पास मरी जा पहुँची। उसकी माँ वहाँ सेकेंड मिस्ट्रेस थी। तब ओकाड़े के उष्ण और दम घोटने वाले एकान्त में, मैं तुम्हें बता नहीं सकती, वे कविताएं मुझे कितना सुख, कितनी शान्ति और कितनी ठंडक पहुँचाती थीं। उन्हीं दिनों मैंने स्वयं एक कविता लिखी।

गोपा—अच्छा, तो तुम स्वयं भी कवयित्री हो।

सरिता—(जैसे किसी भूली घटना को याद करते हुए) नहीं, कवयित्री तो क्या हूँ उन दिनों मैं बड़ी व्यथित थी। मुझे रात को नींद न आती थी। असीमा के बर्ताव से मेरे हृदय में आग सी लगी रहती थी—तब अपने मन का बोझ हलका करने के लिये मैंने एक कविता लिखी थी।

गोपा—किन्तु असीमा ने क्या किया तुम्हारे साथ ?

सरिता—तुम कल्पना भी नहीं कर सकतीं, उसने मेरे साथ कैसा बुरा बर्ताव किया। उस पर मेरा अपार स्नेह था। हम साथ-साथ पढ़ीं, साथ-साथ खेलीं, एक बिस्तर पर सोईं। वर हमारे साथ साथ

और प्रेम अथाह ! जब मैं नौकर हो कर ओकाड़ा चली गई तो हम बहुत दिनों तक एक-दूसरी को प्रतिदिन पत्र लिखती रहीं। गर्मियों की छुट्टियों से पहले असीमा के कई पत्र आए कि मरी जरूर आओ। मैं स्वय ओकाडे की धूल और पसीने से भरी दुपहरियों और गला घोंटने वाली गर्म सन्ध्याओं में ऊब चुकी थी।

गोपा—तुमने लाहौर मे क्यों न नौकरी कर ली ?

सरिता—(दर्द से हँसती है) यह लम्बी कहानी है। मैं लाहौर से दूर ही रहना चाहती थी। (बात को जारी रखते हुए) मैं मरी चली गई—असीमा के पास। उन दिनों गुणेन्द्र वहा आया हुआ था।

गोपा—गुणेन्द्र कौन ?

सरिता—एक लडका था। मुझे असीमा ही से पता चला कि वह उससे प्यार करता है और स्वयं असीमा को भी उससे विवाह करने में आपत्ति नही, और उसकी मा भी राजी है।—

(गोपा दिलचस्पी से सिर हिलाती और मुस्कराती है।)

—लेकिन इतने दिन तक उसके साथ रहने पर भी गुणी ने कोई ऐसा प्रस्ताव न किया था, और असीमा आतुर हो उठी थी।

गोपा—(दिलचस्पी से हँसती है) खूब !

सरिता—मैंने गुणी को देखा। असीमा ने स्वय उससे मेरा परिचय कराया—मँझले कद का सुन्दर हृष्ट-पुष्ट युवक था। असीमा उससे कुछ लम्बी थी। पर जोड़ा बुरा न था। असीमा ने मुझसे कहा कि मैं उससे मेल-मिलाप बढ़ाऊं और उसे विवाह का प्रस्ताव करने पर राजी करू। 'वह फैसला करे', असीमा ने कहा, 'मैं इस बात को लटका रखना नहीं चाहती। नहीं मेरी मा कहीं और 'हाँ' कर देगी।'

(गोपा दिलचस्पी लेते हुए मुस्कराती है)

—यद्यपि मैं इस मामले में कतई न पड़ना चाहती थी पर असीमा के अनुरोध से तंग आकर मैंने गुणी से मेल-जोल बढाया और असीमा ने मुझपर अभियोग लगाया कि मैंने गुणी को उससे छीनने की कोशिश की थी।

गोपा—(जो कहानी सुनते सुनते कौच पर पीछे को झुक गई थी, अचानक चौंक कर) क्या ?

सरिता—मैंने केवल असीमा के लिये उससे बातचीत की—उसे समझाया कि यदि वह उससे प्यार करता है, और प्रकट है कि वह उससे प्यार करता है, तो विवाह के लिए उसकी माँ से कहे। मैंने उसे बताया कि असीमा को भी उससे असीम प्रेम है। फिर झिझक कैसी?—लेकिन यह अजीब बात है, मैं अब तक नहीं समझ सकी, क्यों उसने ऐसा किया—पर जितना भी मैं असीमा के लिये उसके निकट गई उतना ही वह असीमा से दूर होता गया। यहाँ तक कि एक दिन उसने अपनी गम्भीरता को हँसी में छिपा कर मुझसे विवाह का प्रस्ताव कर दिया।

गोपा—(जोर से ठहाका मार कर हँसती हुई) वाह !

सरिता—मैंने तत्काल जाकर असीमा से कह दिया। उसके सामने सारी परिस्थिति रख दी। उस लड़के की मूर्खता पर हँसी। उसे समझाया कि मेरे मन में गुणी के लिये रत्ती भर भी स्थान नहीं। ऐसा होना निपट असम्भव है। हमारे मध्य किसी प्रकार की समानता नहीं—जाति, शिक्षा, विचार, वयस—किसी प्रकार की भी तो नहीं। किन्तु असीमा को विश्वास न आया; उसने न जाने मुझे कैसे कैसे ताने दिए। 'तुम चाहे उससे विवाह न करो', उसने कहा, 'पर तुम

उससे खेलना अवश्य चाहती हो। यह जानकर तुम्हारे अहम् को सान्त्वना मिलती है कि वह भी तुम्हारे चाहने वालों में से है'......न जाने वह और क्या क्या कहती यदि मैं तत्काल वहाँ से उठ कर चली न आती। अड्डे पर मुझे तीन घण्टे तक लारी की प्रतीक्षा करनी पड़ी। मैंने अड्डे पर बैठे रहना स्वीकार कर लिया किन्तु वापस न गई।

(बेचैनी से कमरे में एक चक्कर लगाती है)

—ओकाड़ा पहुँच कर मैंने इस घटना को भूलने का बड़ा यत्न किया। जब सफल न हुई तो मन के बोझ को हल्का करने के लिये मैंने एक कविता लिखी।

गोपा—ओह ! और फिर वह कविता तुमने उनको भेज दी।

सरिता—मैंने तो इस बात की कल्पना तक न की थी, पर मेरे भाई ने सलाह दी कि इसे किसी को दिखा कर छपवा देना चाहिए और तब मुझे इस बात का ध्यान आया।

(फिर अँगड़ाई लेती है।)

—यह पानी—यह तो थमता ही नहीं, और मैं वहाँ आज ही पहुँचना चाहती हूँ। कल तो मुझे वापस चल पड़ना है।—

(कुछ क्षण खिड़की के पास खड़ी रहती है।)

—देखो तो ! बरसते पानी ने जैसे भागती हुई आँधी को पकड़ कर बाँध लिया है। मूसलाधार वर्षा में धूल के तड़फड़ाते हुए इस काले अजगर को तो देखो।—

(गोपा उठ कर उसके पास चली जाती है।)

—आकाश निर्मल हो रहा है। शायद वर्षा थम जाए। मुझे चल देना चाहिए।

गोपा—नहीं। बादल घुल रहे है। झड़ी लग जायगी—रिम झिम रिम झिम...स्वर भी न होगा। बस बरसता रहेगा भगवान की निःस्वन कृपा की भाँति !

सरिता—कृपा ! (व्यंग से मुस्कराती है) मेरे लिये तो यह एक यातना बन गई।—

(निराश होकर कमरे का एक चक्कर लगाती है। तख्त पर पड़ी हुई पुस्तक को उठाकर देखती है।)

—यह कौन सी पुस्तक है ?

गोपा—(हँस कर) तुम्हारे काम की नहीं। वनस्पति विज्ञान पर एक ट्रीटाइज (treatise) है। कविता की अपेक्षा विज्ञान मुझे अधिक पसन्द है।—

(सरिता अनमने भाव से पुस्तक खोल कर देखने लगती है।)

—तुमने नाम तो उनका बताया नहीं। प्रीतनगर मे तो अधिकांश सिक्ख रहते हैं।

सरिता—(हँस कर) नहीं ! वे तो ब्राह्मण है।

गोपा—(तनिक चौंक कर) ब्राह्मण ! उनका नाम क्या है ?

सरिता—गौतम !

गोपा—(चेहरे पर एक बादल सा आ जाता है।) गौतम !

सरिता—(पुस्तक से नज़र हटाकर) क्यों ! वे तो बड़े प्रसिद्ध कवि हैं।

गोपा—(सम्हल कर मुस्कराती है) हाँ, वे प्रसिद्ध कवि है।

(फिर जा कर कौच पर बैठ जाती है)

सरिता—(पुस्तक को वहीं फेंक कर उसके पास आती है।) क्या तुम उन्हे जानती हो ?

गोपा—नहीं। (कुछ क्षण बाद, जैसे किसी दूसरी दुनिया से बोल रही हो) एक बार इसी प्रकार आँधी-पानी मे कुछ घड़ियो के लिए आए थे। बाबा प्राय. उनका जिक्र किया करते हैं।

(फिर उठ कर कमरे का एक चक्कर लगाती है और आरामकुर्सी पर जा कर लेट जाती है। सरिता फिर जाकर तख्त से पुस्तक उठाती है और पढ़ने की चेष्टा करती है, पर उसे उबासियां आती हैं, इसलिये लेट जाती है।)

गोपा—(सहसा चौंक कर) यहाँ न लेटिए! (उठ कर उसके पास जाती है) इधर आइए, मेरे साथ अन्दर कमरे मे। दस-बीस मिनट आराम कीजिए।

सरिता—(लेटे लेटे) मुझे सोना नहीं। मैं तो यों ही तनिक कमर सीधी करना चाहती हूँ।

गोपा—आप निश्चिन्त होकर लेटिएगा। ज्यों ही वर्षा कम हुई, मैं आपको जगा दूंगी।

(सरिता उठती है। गोपा उसे अन्दर कमरे मे ले जाती है और बाहर खड़े खड़े ही संकेत करती है)

—वह मेरी चारपाई है। (हँस कर) आप निस्संकोच उस पर आराम कीजिए। उमस लगे तो बाहर का दरवाजा खोल लीजिएगा। (संकेत करते हुए) यह आगन मे खुलता है और वह बाहर बरामदे मे।

(सरिता भीतर चली जाती है। गोपा दरवाज़ा लगा कर पर्दे छोड़ देती है और फिर चुपचाप सिर नीचा किये घूमती है।)

—(कमरे में घूमते हुए अपने आप) हूँ ! तो यह कवि भी है और शिकारी भी ! (फिर कुछ क्षण चुप घूमती है) और ये कविताएँ—चुम्बक है ! कितनी दूर से लोह-चून को खींचती हैं—मिंटगुमरी, ओकाड़ा, लाहौर, अटारी और फिर यह देहात...

(कोई किवाड़ खटखटाता है)

—किन्तु मैं तो काव्य की रसिक नहीं, (और भी धीमे स्वर में) फिर मैं क्यों चली आई इस जलते-तपते मरुस्थल मे...

(कोई और भी ज़ोर से किवाड़ खटखटाता है । गोपा मुड़ कर दरवाज़ा खोलती है । गौतम बरसाती पहने निचुड़ता हुआ प्रवेश करता है ।)

गोपा—ओह ! आप ?

गौतम—हाँ, मैं ! (कोट उतार कर खूंटी पर टांगते हुए) क्यों ? मैंने कहा न था—शनि को आऊँगा । तुम भूल ही गई ?

गोपा—नहीं...नही...यह आँधी-पानी...

गौतम—(रूमाल से आँखें पोंछते हुए) ओफ, यह आँधी ! (आँखें मलते हुए) ऐसा लगता है जैसे इस मरु की सारी रेत इन आँखों मे पड़ गई हैं ..और यह पानी...यदि चौगावा से कपूर का कोट न ले लेता...(हँसता है) वह भी साथ था । पश्चिमी आकाश के तेवर देख कर वह तो रुक गया वहीं । मैंने कहा, मैं तो जाऊंगा . इक्के वाला न चलता तो मैं पैदल चला आता ।

(गोपा हँसती है)

—(जूते पयादान पर साफ़ करते हुए) तुम्हे शायद विश्वास नही होता ! सचमुच मैं पैदल चला आता । यह हँसी नहीं ! तुम समझती हो—मैं दस मील भी पैदल नही चल सकता !

गोपा—(व्यंग से) आपके विषय में तो नहीं कह सकती, किन्तु दुनिया में ऐसे लोगो की कमी नहीं जो दस तो क्या सौ मील...

गौतम—तुम यदि लाहौर से वनीके तक आ सकती हो, तो मै क्या प्रीतनगर से यहाँ तक नही आ सकता ?

गोपा—मैं तो बाबा को देखने आई हूँ। फिट आ जाते हैं उन्हे। लेकिन ससार मे ऐसे लोगों का अभाव नही जो . ...

गौतम—शायद तुम्हारे दर्प को यह मानना स्वीकार नही कि तुम किसी मुझ जैसे गरीब के लिए इतनी दूर चली आई हो ! (उसके समीप आकर कुर्सी पर बैठ जाता है और खिन्नता से हँसता है) लेकिन मुझे यह स्वीकार करने मे तनिक भी लज्जा नहीं कि मैं तुमसे और केवल तुमसे मिलने के लिए इस आँधी-पानी के थपेडे सहता चला आया हूँ। (लम्बी सास लेता है) तुम शायद इसे अपना अपमान समझती हो कि एक दीन-दुखी कवि से मिलने इतनी दूर चली आओ।

गोपा—दूसरो की सहानुभूति प्राप्त करना आपको भली-भाँति आता है।

(कुर्सी से उठ कर तख्त पर बैठ जाती है।)

गौतम—(उठ कर उसके पीछे जाता हुआ) तुम्हे यह हो क्या गया है ? तुम मेरी बेबसी पर हँसती हो !

(गोपा चुप रहती है।)

—मेरा जीवन एक विशाल मरुस्थल था गोपा, इसीलिए मैंने नगर के कोलाहल से नाता तोड़ इस वीराने को अपना साथी बनाया, जहा दिन को गर्म लू कीकर और पराँह के पेड़ो तक को जलाती हुई चलती है, और रात इन निर्जन वीरानों मे जड और करीर की झाडियों

में साय-साय करती हुई खेलती है और जहां किसी एकाकी किसान का गीत किसी बेबस क ' चीत्कार सा दिल को चीरता हुआ चला जाता है—इस मरु का मौन गोपा, मेरे हृदय का मौन बन गया था और इस निर्जन का सूनापन मेरे हृदय का सूनापन। लेकिन जब से तुमने—गोपा!—तुमने अपनी मादक दृष्टि से इसे देखा है, इसमें मधुवन खिल उठे हैं—रंग, राग, रस और गंध से भरे मधुवन—इस मरु की तपन मिट गई है और अनजाने पछियों ने अपने रसीले गीतों से इसके सूनेपन को मुखरित कर दिया है।

गोपा—(सहसा उठ कर खिड़की की ओर जाते हुए अपने आप) ओह, मैं समझ गई, मैं समझ गई, मुझे कौन से चुम्बक ने खींचा......

गौतम—(उठ कर उसके पीछे जाता हुआ, खिड़की के बाहर संकेत करके) इस ओर देखो—इन काली, कजरारी घटाओं को—इनकी एक करुणामयी दृष्टि से ये वीराने लहलहा उठेंगे; धान, ईख और मकई की खेतियाँ वायु के सरस परस से लहलहा उठेंगी; शटाला और सेंजी की गंध पशुओं को मदमत्त बना देगी और करीर के लाल गुलाबी फूलों से मरुस्थल जगमगा उठेंगे—मेरे मन के मरु की ओर भी इसी मदमाती घटा की भाति ताका है तुमने गोपा!

(गोपा उत्तर नहीं देती, चुपचाप तेवर चढ़ाए गहरी सोच में डूबी घूमने लगती है।)

गौतम—(उसके पीछे जाता हुआ) और मेरा हृदय ही नहीं, हृदय के समस्त भाव रंग, रस और राग से शराबोर हो उठे हैं। मेरी उदासी मुस्करा उठी है। अभी कल मैंने एक गीत लिखा—"आज मेरे आँसुओं में याद किसकी मुस्कराई"—हाँ मुस्कराई। पहले यदि मैं लिखता तो याद रो सकती थी, तिलमिला सकती थी, पर मुस्करा न

सकती थी, किन्तु आज ? (गाता है) "आज मेरे आंसुओं में याद किसकी......"

गोपा—(मुड़ कर एक व्यंग और शरारत से भरी मुस्कान से) मैं बताऊँ, किसकी ?

गौतम—(बिलकुल उसके पास जाकर) कहो गोपा, किसकी ? कहो !......कहो !... ।

(दोनो एक-दूसरे के सामने क्षण भर खड़े रहते हैं। गौतम की आँखों में आशा की चमक है और गोपा की आँखों में घृणा, उपेक्षा और क्रोध की तरेर।)

—(आर्द्र कंठ से) बताओ !

गोपा—सरिता की !

गौतम—(आँखों की चमक मन्द पड़ जाती है) सरिता की !

गोपा—ओकाडे वाली हेडमिस्ट्रेस की।

गौतम—(धीरे से) तुम उसे कैसे जानती हो ?

गोपा—(चुप)

गौतम—क्या वह तुम्हारे साथ पढ़ती थी ? क्या उसने तुम्हें कुछ लिखा है ?

गोपा—उसने मुझे लिखा है कि मैं उनसे प्रेम करती हूँ।

गौतम—पगली !

गोपा—(व्यंग से) यदि प्रेम करना पागलपन है तो... ..

गौतम—नहीं......लेकिन...मेरा मतलब है कि...

गोपा—उसने यह भी लिखा है कि वे भी मुझसे प्रेम करते हैं।

कर) ओह, मैं समझा। तुम्हारी इस उपेक्षा पर मैं चकित था। इस आँधी-पानी में इतना कष्ट झेल कर मैं आया, पर तुमने मुझे चाय तक के लिए नहीं पूछा!

गोपा—(व्यङ्ग से) मैं उतनी दयालु जो नहीं।

गौतम—(बिगड़ी बात बनाने की चेष्टा करते हुए) तुम्हें ज्ञात तो कुछ है नहीं, यों ही जली-कटी सुना रही हो।

गोपा—मुझे आपसे भी अधिक ज्ञात है और सरिता से भी—मैं भावनाओं की धारा में बह जाने वाली पागल रूमानी लड़की नहीं हूँ। मैं काव्य की अपेक्षा विज्ञान को अधिक पसन्द करती हूँ। किन्तु चुम्बक का जादू, मुझ पर भी हो चला था। इसी प्रकार आंधी-पानी में भीगते हुए जब आप आश्रय खोजते खोजते यहाँ आए थे तो आपकी बातों ने मुझे मोह लिया था। दूसरों की सहानुभूति प्राप्त करने में आपको अपूर्व दक्षता प्राप्त है। आपने कहा—गौतम और गोपा—शायद हम आदि काल से एक-दूसरे के लिए बने हैं।—और आपके ये शब्द मेरे श्रवणों पर छा कर रह गए। उन सब पर विश्वास न करते हुए भी मैं समझने लगी—कदाचित आप सच कहते हैं। किन्तु मेरे पैर बिल्कुल नहीं उखड़े। सरिता की बातें सुन कर मुझ पर सारी परिस्थिति अपनी समस्त वास्तविकता के साथ खुल गई।

गौतम—(हताश) न जाने उसने तुम्हें क्या लिख भेजा है। बात केवल इतनी है कि उसने मुझे एक कविता ठीक करने के लिये भेजी थी। मैंने उसका दिल तोड़ना उचित नहीं समझा। हाँ, मैं उसके पत्रों का उत्तर देता रहा, लेकिन यह सब तो मात्र शिष्टाचार के नाते था और उसने मुझसे मिलने की इच्छा प्रकट की। ..

गोपा—और आपने अपने मौन एकांत, प्रतिपल गहरे होते अपने

अवसाद, इन नीरस निर्जन वीरानो के सूनेपन का जिक्र करके उसके मन में यह इच्छा उत्पन्न नहीं की—इस अथाह सूनेपन का, ठहरे रुके जीवन-सागर में विवश हाथ पैर मारने वाली अपनी घड़ियों का, गला घोंटने वाले अपने एकात का रोना रोकर आपने उसकी सहानुभूति को प्रेम के अदम्य भाव मे परिणत नहीं किया !—उसके कल्पना-जगत में एक श्रान्त और दुखी कवि है जिसे विपदाओं ने ग्रस कर निर्जीव कर दिया है। उस कवि के दुःख को बटाने, उसके घावों पर प्रेम का ठण्डा फाहा रखने, उसे फिर से जीवन-दान देने वह अनायास चली आएगी। उसे क्या मालूम कि यह कवि शिकारी है...

गौतम—गोपा......

गोपा—पीड़ा से भरी करुण मधुर बातों का दाना बखेर कर पंछी को फँसाना जानता है। वह बेचारी क्या जाने की पंख काट कर वह उसे छोड़ देगा, पिंजरे तक मे बन्द करके न रखेगा !

गौतम—गोपा—

गोपा—मैं पूछती हूँ, कवि के काव्य और कर्म मे इतना अन्तर क्यों ? क्या यह अच्छा न था कि यह कवि कवि न होकर मात्र मनुष्य बनता, (कमरे में घूमते हुए) मात्र मनुष्य बनता ?

गौतम—(उसके पीछे जाते हुए) तुम मेरी बात तो सुनो गोपा...

गोपा—(मुड़ कर) ऐसी ही बातों से आप मुझे फँसाना चाहते हैं, किन्तु मैं भली भाँति जान गई हूँ कि काव्य के संसार का दुखी, उदास, व्यथित कवि यथार्थ जगत का हँसमुख शिकारी है जिसे अपने शिकार को फँसाने में रस मिलता है और जो उसका तड़फड़ाना देख कर ज़रा भी तो नहीं पसीजता।

गौतम—गोपा !

गोपा—(धीरे धीरे घूमते हुए) तुम सरिता से सिर्फ खेल रहे हो, या फिर उससे नहीं तो मुझसे खेल रहे हो ! (हँसती है) और न जाने और कौन कौन तुम्हारे इस भयानक खेल के खिलौने बनी हुई हैं ।

गौतम—गोपा :

गोपा—(मुड़ कर) क्या तुम यह सब बातें उसके मुँह पर कह सकते हो ?

गौतम—बातें ?

गोपा—कि तुम उससे प्रेम नहीं करते, कि वह एक पागल रूमानी लड़की है, कि तुमने केवल दया करके .

गौतम—मैंने कभी उससे प्रेम नहीं किया ।

गोपा—(चीख़ कर) तुम उसके मुँह पर कह सकते हो ?

गौतम—(झिझकते हुए) मैं . मैं...उसके मुँह पर कह सकता हूँ ।

गोपा—(नौकर को आवाज़ देती है) दूलो...दूलो...

(नौकर आंगन के दरवाज़े से झांकता है ।)

गोपा—इस कमरे में वह बीबी जी सोई हुई हैं, जरा उनको जगा दो ।

गौतम—(चेहरे का रङ्ग फीका पड़ जाता है) क्या वह...क्या सरिता...

गोपा—हाँ सरिता !—आपके इस घायल हृदय पर प्रेम का ठंडा फाहा रखने के लिये इस आंधी-पानी में एक टूटे से इक्के पर इतनी

दूर से चली आई है ! (दूलो को खड़े देख कर) मुटर-मुटर क्या तक रहा है ! जा बुला ला उन्हे !

दूलो—जी वे तो चली गई ।

गोपा—चली गई ?

दूलो—आपको इन से बातें करते देख कर उधर ही से चली गईं । कहती थी—मुझे देर हो रही है, मुझे आज ही प्रीतनगर पहुँचना है—गोपा बहिन से मेरी ओर से क्षमा माग लेना । मैंने कहा, "बीबी जी आपके कपड़े तो अभी गीले है ।" बोली, "आते समय लेलूगी !"

गोपा—चुम्बक का जादू अभी उसके लिये बना हुआ है । लोह-चून की भाँति वह खिचीं चली जायगी । (लम्बी सांस लेती है) पर मेरे लिये चुम्बक टूट गया । मुझ पर उसके आकर्षण की यथार्थता खुल गई । (व्यङ्ग से हँसती है) पागल रूमानी लड़की......लेकि अवसर पड़ने पर कौन पागल और रूमानी नही बन जाता ? (मुड़ कर ज़रा हँसते हुए गौतम से) मैं चाय पूछना तो भूल ही गई । कहिए चाय पीजिएगा ? (और भी हँसते हुए) कपडे बदल डालिए ! भीग गए हैं।

(सहसा पर्दा गिर जाता है ।)

चिलमन

पात्र

हरि— एक कवि जो अपनी रुग्ना पत्नी की शुश्रूषा मे निमग्न है ।

किरण— उसकी रुग्ना पत्नी

मा— उसकी माँ

रूपा— उसकी बहिन

मनोहर— उसका मित्र जो शशि से प्रेम करता है

शशि— हरि से प्रेम करने वाली एक तरुणी जो रंग मच पर नहीं आती ।

राधे— हरि का छोटा भाई ।

स्थान —

तीस हजारी दिल्ली मे बीमार किरण का कमरा।

समय—

रात का पहला पहर।

[पर्दा उठते समय स्टेज पर बिलकुल अँधेरा है। माँ प्रवेश करती है।]

माँ—यह तुमने अँधेरा क्यो कर रखा है ? बत्ती क्यो नही जलाते ?

[बिजली का बटन दबाती है। कमरे मे प्रकाश हो जाता है। हरि किरण की चारपाई के पास बठा दिखाई देता है। किरण चादर ओढे अचेत पड़ी है। उसके टख़नों में रस्सियों के साथ दो ईंटें बँधी हुई हैं। कमरा बिलकुल साफ़ है। चारपाई के पास छोटी सी मेज़ पर दवाइयों की कुछ शीशियाँ पड़ी हैं। इसके अतिरिक्त कमरे में और कुछ भी नहीं। सामने की दीवार में एक खिड़की है, जिस पर चिलमन लगी हुई है।]

हरि—रोशनी बुझा दो, रोशनी बुझा दो, किरण की दशा कुछ अधिक खराब है। रोशनी से वह घबराती है। परसों से धूप की शिकायत कर रही है।

माँ—तुम तो पागल हो जो अँधेरे मे भूतों की तरह बैठे हो। उठो, मैं इसके सिरहाने बैठती हूँ। तुम जरा उन लोगों के साथ जाकर मन बहलाओ। ताश खेलो...

[दूसरे कमरे से क़हकहों की आवाज़ आती है।]

हरि—मैं यहीं बैठना चाहता हूँ। तुम रोशनी बुझा दो।

माँ—शशि क्रिसमस की छुट्टियों में आई है। घर न ठहर कर वह सीधी तुम्हे मिलने चली आई है। वह तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है।

हरि—मैं इसके सचेत होने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

[दूसरे कमरे से फिर कहकहों की आवाज़ आती है।]

—इसकी दुर्बलता आज अत्यधिक बढ़ गई है, घड़ी-घड़ी वह अचेत हो जाती है, तुम जरा उन लोगों से कह दो—इतने जोर से न हँसें।

माँ—कौन हँसता है ? आज चार वर्ष से हँसी कहकहे इस घर के लिए पराये हो रहे हैं। सदैव यहाँ एक मौत का-सा समाँ छाया रहता है। आज शशि आई है। और उसके साथ मनोहर। और यह भारीपन कुछ दूर हुआ है। बहू की बीमारी का क्या ठिकाना ? और वर्ष भर भी रह सकती है, पर वह तो विशेष कर तुम्हे देखने बनारस से आई है। तनिक उनके पास जा बैठो...

हरि—मैं कहीं नहीं जाना चाहता। तुम रोशनी बुझा दो। यह दोपहर से बेहोश पड़ी है। होश में आएगी तो रोशनी से घबरा जाएगी।

माँ—(बत्ती बुझाते हुए) तो निपट अँधेरे में बैठने से, मिट्टी का दिया ही जला लो।

[चली जाती है]

किरण—(होश में आकर) यह घुप्प अँधेरा क्यों है ? (और भी घबराए हुए स्वर में) यह घुप्प अँधेरा क्यों है ?...मैं...मैं ..

हरि—मैं तुम्हारे पास बैठा हूँ।

किरण—यह बाहर कुछ दिखाई क्यों नहीं देता ? क्या आकाश पर बादल छाये हुए हैं ? क्या कृष्ण-पक्ष आरम्भ हो गया ? . .. किन्तु एक तारा भी तो आकाश पर नहीं।

हरि—नहीं आज तो पूर्णमासी है। खिड़की पर चिलमन लगी हुई है। तुम भूल गई, तुम्हीं ने तो कहा था—सूरज की धूप सीधी आँखों पर आकर पड़ती है। यहाँ कोई चिक लगवा दो। आज दोपहर ही यह चिक बनकर आई है। साधारण मारकीन की नहीं, इस पर रंगा हुआ टाट लगा है—गहरे नीले रंग का—प्रकाश की किरण तक इसके अन्दर नहीं आ सकती। पर तुम तो सो रही थीं।

किरण—मैंने इसे नहीं देखा। (लम्बी साँस लेती है) न जाने क्यों मुझे कुछ नींद-सी आ जाती है। बीमारी से जूझ-जूझकर थके हुए मेरे अङ्ग आप से आप सो जाते हैं। चेतना-हीन से हो जाते है। पर इस चिक को अब उठा दो। मैं प्रकाश चाहती हूँ ..

हरि—मैं बिजली की बत्ती जला दूँ ?

किरण—नहीं, नहीं। बिजली की रोशनी से मुझे घबराहट होती है। इस चिलमन ही को उठा दो। मैं प्रकाश चाहती हूँ...ठण्डा, शान्त, सुखद प्रकाश ..

[हरि जाकर चिक उठाता है। कमरे में मद्धम-सी ज्योत्स्ना फैल जाती है।]

—तनिक और ऊँची, तनिक और ऊँची, इसे पूरी उठा दो ! इस उजली, धुली, ठण्डी चाँदनी को कमरे मे बे-झिझक आने दो। मन होता है।—चाँदनी मे जी भरकर स्नान करूँ। किरणों से मल-मलकर नहाऊँ। आह ! पर यह ईंटों का बोझ—ये ईंटे अब उतार दो !

हरि—अभी परसों तुम्हारे पलास्टर लगाया गया था, डाक्टर कहता है...

किरण—डाक्टर ! (लम्बी साँस लेती है) ऐसा प्रतीत होता है

मानों जब से मैंने होश सम्हाला है, मैं इसी तरह विवश पड़ी हूँ; मेरे टखनों से इसी तरह ईंटे बँधी है; मैं हिल नहीं सकती; बैठ नही सकती; उठ नहीं सकती और कभी-कभी मैं सोचती हूँ कि यदि आप इन ईंटों की रस्सियाँ काट भी दे तो क्या मैं उठकर चल-फिर सकूँ ? (फिर दीर्घ निश्वास छोड़ती है) टाँगे शायद चलना भूल गई हैं। (आकांक्षा भरे स्वर से) मैं इस चाँदनी रात मे कितना घूमना चाहती हूँ !

[दूसरे कमरे से फिर कहकहों की आवाज़ आती है।]

किरण—यह कौन है ?

हरि—मनोहर है, शायद लोग ब्रिज खेल रहे हैं।

किरण—मुझे ब्रिज खेले जैसे वर्षों बीत गये हैं। मैं कितना ब्रिज खेलती थी ? बाजी पर बाजी जीता करती थी ..मैं ब्रिज खेलना चाहती हूँ। मैं ब्रिज खेलना चाहती हूँ। क्या वे इस कमरे मे नहीं आ सकते ? क्या मैं उनके साथ ब्रिज नही खेल सकती ?

हरि—तुम बहुत दुर्बल हो किरण !

किरण—उनसे कह दो—इस कमरे मे बैठकर खेलें। मैं केवल देखूँगी ..

हरि—तुम अत्यन्त दुर्बल हो किरण, डाक्टर कहता है..

किरण—आह डाक्टर !

[लम्बी साँस लेती है दूसरे कमरे से फिर कहकहों की आवाज़ आती है]

हरि—(चिढ़कर) ये लोग चुप क्यों नहीं होते ? मैं कितनी बार कह चुका हूँ...

किरण—तुम उन्हे कुछ न कहो ; मेरे कारण घर मे पहले ही काफी

उदासी छाई रहती है। कोई हँसता नहीं। जाओ तुम भी जाओ। उनके साथ जाकर मन बहलाओ। मैं मन से तुम्हारे साथ हूँगी, मेरी आँखें तुम्हे खेलते देखेंगी...पर मेरी आँखे...मेरी आँखे तो बन्द हो रही हैं, वह ताकत की दवा कहाँ है? वह ताकत की दवा कहाँ है? मुझे नींद से डर लगता है, मुझे नींद से . ...

[हरि शक्ति की दवाई ढूंढ़ता है। माँ दिया लिये प्रवेश करती है]

हरि—(अपने आप खीज भरे स्वर मे) मैं कहता हूँ वह ताकत की दवा कहाँ है?

माँ—क्या बात है? क्या ढूँढ रहे हो?

हरि—वह ताकत की दवा कहाँ है? किरण फिर अचेत हो गई है।

माँ—इस अँधेरे में तुम्हे क्या मिलेगी, यह लो मैं दिया ले आई हूँ। अँधेरा ठीक नही। अँधेरा अशुभ है। अँधेरा .

हरि—बाहर चाँद चमक रहा है।

माँ—पर कमरे में तो अँधेरा है। बिजली नहीं जलाना चाहते तो इसे ताक में पड़ा जलने दो।

[दिया ताक में रख देती है। वहीं दवा की शीशी पड़ी मिल जाती है, उसे उठा लेती है।]

माँ—और यह लो शीशी। यही शायद ताकत की दवा है। पर मेरी मानो तो अब इसे आराम करने दो। इन औषधियों और इन प्लास्टरों से इसे मुक्ति दो!

हरि—तुम्हे कुछ मालूम नहीं तो चुप रहो। और देखो उनसे कह दो कि इतना गला न फाड़ें, इतने जोर से न हँसे।

माँ—मैने उन्हे पहले ही तुम्हारे डर से दूसरे कमरे में भेज दिया है।

हरि—(जैसे अपने आप) इसकी तबीयत बेहद खराब है, यह बार-बार बेहोश हो जाती है।

[दवा चमचे मे डालकर उसके मुँह में टपकाता है]

—सब गालो पर बह गई। माँ तुम जरा चमचा थामो, मैं दाँत खोलता हूँ।

[माँ चमचा लेकर भरती है। हरि दाँत खोलकर फिर दवा डालने का प्रयास करता है।]

—व्यर्थ है, गिर जाती है, बहुत कम अन्दर गई है।

माँ—लो अब आओ। तुम कब से यहाँ बैठे हो। अब उठो। मैं यहाँ बैठती हूँ। तुम उधर जाकर तनिक कमर सीधी कर लो। तनिक उनके साथ जाकर मन बहलाओ। तनिक उनका जी रख लो...

हरि—मैंने एक बार कह दिया मैं नहीं जा सकता। मैं ..

माँ—शशि न ठीक तरह से खेल रही है न...

हरि—तो मैं क्या करूँ ? मनोहर वहाँ है...

[किरण दायाँ हाथ हिलाती है।]

—(स्वर में कोमलता लाकर)—किरण

किरण—(जैसे सपनों की दुनिया से आनेवाले डरे-डरे स्वर में) मैं प्रकाश चाहती हूँ। मैं प्रकाश चाहती हूँ। मैं अँधेरा नही चाहती। (आँखें खोलती है) मेरी चारपाई तनिक उस खिड़की के पास रोशनी में कर दो ! मैं बाहर के दृश्य देखना चाहती हूँ। (लम्बी साँस लेती है)

लगता है जैसे इन दृश्यों के लिए मैं सर्वथा अपरिचित हो गई हूँ। पर ये मेरे सपनों मे बार-बार आते हैं, (तनिक उल्लसित होकर) अभी मैंने अपने आपको अजीतगढ़ के उस मीनार पर चढ़े देखा था...

हरि—(शक्ति की दवाई चमचे में डालता हुआ अपने ध्यान में) अजीतगढ़ के मीनार पर ?

किरण—मैंने देखा, यह सारी की सारी राजधानी मेरे चरणों में बिछी हुई है और सूरज की चमकती हुई धूप मे नये मकानों की नयी छतें चमक रही हैं।

हरि—(दवा की शीशी को मेज़ पर रखता हुआ पूर्ववत बे-ख़याली में) सूरज तो कब का छिप चुका है।

किरण—हाँ सूरज कब का छिप चुका है। (उदास होकर) शायद अब मैं उसे कभी न देख सकूँगी। अजीतगढ़ के मीनार से नये बने हुए मकानों की नयी छतों को कभी न देख सकूँगी।

हरि—(उसके कंठ में औषधि टपकाता हुआ) तुम वर्षों तक देखोगी। अपनी इन आँखों से, मेरी इन आँखों से वर्षों तक देखोगी।

किरण—(औषधि से कुछ शक्ति पाकर तनिक ऊँची और उल्लास भरी आवाज़ में) आपको वह दिन स्मरण है न, जब रात भर वर्षा होती रही थी और प्रातः भीगी-भीगी, भारी-भारी समीर चल रही थी और मैंने आपको सैर पर जाने के लिए विवश कर दिया था। हम रिज्ज* पर गये थे और पीर-गायब के मज़ार पर चढ़े थे ..

---

* तीस हज़ारी दिल्ली के पास एक पहाड़ी है। उस पर रिज्ज (Ridge) भी है और जंगल भी।

हरि—मुझे सब स्मरण है, पर तुम अब चुप रहो, तुम थक जाओगी।

(माँ बेज़ारी से सिर हिला कर चली जाती है)

किरण—नहीं, मैं चुप नहीं रहना चाहती। चुप से मुझे डर लगता है। मैं बोलना चाहती हूँ। मै हँसना चाहती हूँ। मैं खेलना चाहती हूँ।'...

हरि—तुम अधिक न बोलो किरण, तुम आराम करो।'..

किरण—मैं आराम ही तो करती रहती हूँ।

हरि—तुम्हारा शरीर अवश्य आराम करता है पर तुम्हारा मन सदैव उड़ता रहता है।

किरण—(लम्बी साँस लेती है) हाँ, मेरा मन सदैव उड़ता रहता है। अभी-अभी वह उड़कर उस मजार के खडहर पर जा चढ़ा था—याद है न आपको—ठडी, भीगी, मस्त समीर चल रही थी और नीचे वर्षा से भीगी हुई सड़के चमकती हुई तरल चाँदी की भाँति बल खाती, पेड़ो के पत्तों मे झलमलाती थीं। मुझे उस बुड्ढे की आकृति याद आती है।

हरि—(उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरता हुआ बेख़याली में) बुड्ढे की ?

किरण—वह नीचे सीढियों से ऊपर चढने लगा था कि मैं उतरने लगी—खिचड़ी-सी दाढी, मटमैले कपडे, सिर पर पगड़ी और कमर में तहमद—वही नीचे सीढियों मे खड़ा मुझे टुकर-टुकर ताकता रहा। फिर जब उसने साथ की सीढियों पर आपको भी उतरते देखा तो सहसा नीचे उतर गया (धीरे-धीरे अत्यधिक तन्द्रिल सोये-सोये-से स्वर मे) और जब हमने धरती पर पॉव रखा था तो आगे बढकर गिडगिड़ाया था—"जोडी सलामत रहे भूखा हूँ।"

हरि—भूखा था और नदीदा !

किरण—(और भी तन्द्रिल स्वर में) मैं देखती हूँ वही बुड्ढा मेरे सपनो में भयानक रूप धर-धरकर आता है। मै सदैव देखती हूँ—उसके पेट में एक भयानक भट्ठी धधक रही है, और मै तथा मेरे जैसी कई उस लपलपाती भट्ठी का ईंधन बन रही हैं।

हरि—तुम अपने मस्तिष्क को थका रही हो किरण !

किरण—(झुरझुरी-सी लेकर जागते रहने का प्रयास करती हुई) मुझे फिर नींद आ रही है, मेरी आँखों मे अँधेरा छाया जा रहा है—नहीं, नहीं मुझे अधकार से डर लगता है। मेरी चारपाई प्रकाश मे कर दो।

हरि—तुम सो जाओ किरण तुम अपने को थका रही हो।

किरण—(जागने का भरसक प्रयत्न करते हुए) मैं सोना नही चाहती, मैं जागना चाहती हूँ। (लम्बी साँस लेकर और भी तन्द्रिल स्वर में) पर मेरी आँखे तो बन्द हो रही हैं। मेरी आँखों में अन्धेरा छा रहा है। मुझे दवा पिला दो। मुझे दवा पिला दो ! मेरी चारपाई प्रकाश में कर दो

[आँखें बन्द हो जाती हैं।]

हरि—(औषधि का चमचा भरकर उसके मुँह की ओर ले जाता हुआ) किरण...किरण...

[रूपा प्रवेश करती है।]

रूपा—तुम दोपहर से इधर बैठे हो, चलो उधर चलो।

हरि—(औषधि को फिर शीशी में डालता हुआ) यह अचेत हो गई है।

रूपा—माँ को भाभी के पास बैठने दो। तुम जरा चलो, शशि देर से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। वह मन से खेल में भाग नहीं ले रही। अनमनी सी बैठी है।

हरि—(सुनी-अनसुनी करके) तुम जरा चारपाई को खिड़की के पास करने में मेरी सहायता करो। यहाँ अँधेरा है और दिये की काँपती हुई रोशनी इस तक नही पहुँचती।

[दोनों चारपाई उठाते हैं।]

—जरा धीरे! जरा धीरे! ईंटों के हिलने से इसे कष्ट न हो। (खिड़की के पास चारपाई ले जाते हुए) इस अँधेरे में इसकी दुर्बल आकृति और भी दुर्बल दिखाई देती है।

रूपा—अब इसमें रखा ही क्या है? कभी तृप्त न होनेवाली जोंक की भाँति मुई इस बीमारी ने इसका सारा लोहू पी लिया है। तुम व्यर्थ ही इस यातना को बढ़ाए जा रहे हो। व्यर्थ ही सारा-सारा दिन इसके सिरहाने परेशान से बैठे रहते हो। तनिक अपना मुँह तो देखो—कितना पीला पड़ गया है!

हरि—तुम इसका मुँह देखो—पीला भी नही श्वेत है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे यह समस्त ज्योत्सना इसके शरीर से निकलकर इस सारे ब्रह्माण्ड पर फैल गई है और अपनी सारी ज्योति लुटाकर यह शरीर श्रीहीन-सा होकर मुरझा गया है।

रूपा—तुम कैसी बातें करते हो? उठो, माँ को यहाँ बैठने दो। चलकर कुछ देर के लिए शशि के पास बैठो, बनारस से वह केवल तुमसे मिलने दिल्ली चली आई है। तुम कैसे पत्थर हो!

हरि—(उसकी बात का उत्तर न देकर) यह चादर तुम इसके पाँवों पर करदो, नगे हो गये हैं।

रूपा—न जाने कब तक तुम इस ककाल के सरहाने बैठे रहोगे ?

हरि—(जैसे अपने आप) न जाने मैं कब तक इस ककाल के सरहाने बैठा रहूँगा ? अपनी सूनी घड़ियों मे, अपने जाग्रत सपनों में, अपने उन्मन एकान्त में...मैं स्वयं एक ककाल बन जाऊँगा।

रूपा—(भरे हुए गले से) तुम्हे क्या हो रहा है ? तुम्हे दिन-प्रतिदिन क्या होता जा रहा है ?

[किरण हाथ हिलाती है]

हरि—ठहरो ! यह होश में आ रही है।

किरण—(होश में आकर डरे-डरे स्वर में) नहीं-नहीं, मैं अँधेरा नहीं चाहती। मैं अँधेरा नहीं चाहती, मैं प्रकाश चाहती हूँ। मेरी चारपाई प्रकाश में करदो।

हरि—तुम आँखे खोलो, देखो तुम्हारी चारपाई पर शुभ्र, धवल, निर्मल प्रकाश फैला हुआ है। बाहर सड़क पर, पहाड़ी के पत्थरों पर, चट्टानों पर, पेड़-पौधों पर धुला-निखरा नूर फैला हुआ है।

किरण—ओह ! मैं कितना डर गई हूँ ?

[आँखें खोलकर सुख की एक साँस लेती है।]

हरि—(चमचे में दवा डालकर उसकी ओर बढ़ाता है) तुम यह दवा पी लो !

किरण—(दवा पीकर फिर सुख की साँस लेती है।) मैं कितना डर गई हूँ ? (तन्द्रिल स्वर में) अभी-अभी मैं देख रही थी—मैं इस

जंगल में भटक गई हूँ—पत्थरों से ठोकरें खाती, झाड़ियों से उलझती अँधेरे में रास्ता ढूँढती हूँ। मैं चली जाती हूँ। उलझती, गिरती, भटकती, अरावली की ऊंची पहाड़ियों तक चली जाती हूँ—सहसा सामने एक भयानक काला पहाड़ आ जाता है। मैं उस पर चढ़ने लगती हूँ, साँस फूल जाती है। पाँवों में घाव हो जाते हैं। टाँगे चलने से इनकार कर देती हैं, परन्तु मैं बढ़े जाती हूँ। बढ़े जाती हूँ। रोती हूँ, सिसकती हूँ, पर चलना नहीं छोड़ती। (तनिक उल्लसित स्वर में) और मैं उस पहाड़ के शिखर पर जा पहुँचती हूँ। देखती हूँ—सामने पूरब की आँखों में प्रकाश जाग रहा है और नीली-भूरी बदली से सूरज की सुनहली टिकिया निकल रही है।

[माँ प्रवेश करती है।]

हरि—सूरज की टिकिया...

किरण—मैं सहमी हुई सी खड़ी रहती हूँ, किन्तु मेरी नस-नस में नये उल्लास की एक लहर दौड़ जाती है। (लम्बी साँस लेती है) मुझे प्रकाश कितना अच्छा लगता है! मुझे जागृति कैसी मनोहर लगती है।

माँ—(आगे बढ़कर) शशि जाना चाहती है।

हरि—ठहरो! (किरण से) तुमने पहाड़ सर कर लिया है (माँ और बहिन दोनों को सुनाकर) किरण ने पहाड़ सर कर लिया है। (फिर किरण से) इस लम्बी बीमारी की समस्त पीड़ा और कष्ट तुम बड़ी सफलता से सहन करती आई हो। (सुख की लम्बी साँस लेता है) तुम्हारा यह स्वप्न कितना उल्लास-जनक है, कितना सान्त्वनापूर्ण है! और देखो तुम प्रकाश में हो—कितना निखरा धुला प्रकाश फैला है!

सामने मन्दिर की दीवारें इस पूर्णमासी के चाद की पवित्र ज्योत्स्ना मे किसी स्वर्ग के मन्दिर की याद दिला रही है।

किरण—(आकांक्षा भरे स्वर में) मुझे सहारा देकर बैठा दो। मुझे सहारा देकर बैठा दो—मैं खिड़की से मन्दिर को देखना चाहती हूँ। कितनी बार अपने सपनो में, मैं इसकी चौखट से सिर पटकती रही हूँ। इसके अन्दर जाने का प्रयास करती रही हूँ। (दीर्घ निश्वास छोड़ती है) मैं इसके अन्दर जा भी सकूँगी या नहीं ?

हरि—तुम अवश्य जाओगी। तुमने उस काले भयानक जगल में मार्ग बना लिया तो क्या तुम इस मन्दिर के जर्जर किवाड़ों को पार न कर सकोगी ? तुम अवश्य इसके अन्दर जाओगी। हम दोनों साथ-साथ जाएँगे।

किरण—मुझे सहारा देकर बैठा दो। मैं इन पहाड़ियों को देख लूँ, इस मन्दिर को देख लूँ।

हरि—अभी परसों तुम्हारे नासूर को पलास्टर लगाया गया है।

[मनोहर तेज़-तेज़ प्रवेश करता है, परन्तु पास आकर चुप-चाप खड़ा हो जाता है।]

किरण—मुझे लगता है जैसे मेरे नासूर को आराम आ रहा है। मुझे बैठा नही सकत तो मेरी चारपाई के नीचे सरहाने की ओर ईंटे ही रखदो। (अरमान भरी सोईसोई आवाज़ मे) चारपाई खिड़की जितनी ऊँची हो जाएगी और मैं लेटे-लेटे सब कुछ देख सकूँगी। (लम्बी साँस लेती है) न जाने क्यों, मेरा जी बाहर जाने को, पहाडी के पेड़ों मे घूमने को, मीनार पर जा चढने को व्यग्र हो रहा है।

[आँखें बन्द कर लेती है।]

हरि—तुम्हारे नासूर को आराम आ रहा है...

मनोहर—ख़ाक आ रहा है, तुम देख नहीं रहे वह अचेत हो गई है, तुम क्यों उसको, अपने-आपको, दूसरों को धोखा दिये जा रहे हो। तुम कहते हो नासूर भर रहा है। मैं कहता हूँ उसका सारा शरीर नासूर बन गया है। यह अब कभी न भरेगा। चार साल—चार लम्बे साल—कल्पना ही से मेरी आत्मा तक काँप जाती है। और यह चार-पाई से हिली तक नहीं। धीरे-धीरे इसकी भरी हुई देह दुर्बल होती-होती हड्डियों का पिंजर रह गई। इसकी टाँगे सूखते-सूखते लकड़ी बन गईं और तुमने ये ईंटे फिर इसके टखनो से बाँध दी है .

हरि—(**मनोहर की बात का उत्तर न देकर रूपा से**) रूपा जरा बाहर से दो चार बड़ी ईंटे उठा लाओ।

मनोहर—अब इन पलास्टरों और डाक्टरों से इसको मुक्ति दो। इसके टखनों से यह बोझ काट दो। इसे अन्तिम घड़ियो में तो आराम लेने दो—तुम कितने निर्दयी हो कि इसकी इस बीमारी मे भी रस लेते हो।

हरि—मनोहर! तुम कहते क्या हो?

मनोहर—यह रस लेना नहीं तो और क्या है? तुम इसकी पीड़ा मे आनन्द पाते हो। इसके दुःख से प्रेरणा पाकर वेदनामयी कविताएँ करते हो और फिर उन्हीं के अवसाद मे डूबे रहते हो। तुम्हारा यह विचित्र रस पान......

हरि—मनोहर तुम पागल हो गये हो!

मनोहर—मैं चार साल से देख रहा हूँ, किसी दूसरे के घर मे यह अब तक कब की समाप्त हो चुकी होती—रीढ़ की हड्डी का

असाध्य नासूर—लेकिन तुमने इसको इतना खींचा, इतना खींचा—इंजेक्शन दे-देकर, पलास्टर चढा-चढाकर, ईंटे बाँध-बाँधकर और इसकी इस असह्य पीड़ा से तुम अपनी कविताओं के लिए प्रेरणा हासिल करते रहे।

[रूपा ईंटें ले आती है।]

हरि—इधर दो!

(रूपा से ईंटें लेकर चुप चाप पलंग के नीचे रखता है)

मनोहर—तुम इसकी पीड़ा का अनुमान नहीं कर सकते, तुम शशि की पीड़ा का अनुमान नहीं कर सकते, तुम मेरी पीड़ा का अनुमान नहीं कर सकते! ये ईंटे इसके पाँवों ही मे नहीं, उसके पाँवों मे भी बँधी हैं और मेरे पाँवों में भी; ये सुइयाँ इसको ही नहीं चुभतीं, उसको भी चुभती हैं और मेरे दिल मे भी कचोके लेती हैं और यही सूखकर काँटा नहीं हो रही, वह भी हो रही है और मैं भी!—तुमने किरण के शरीर का बीमार लहू...

हरि—तुम पागल हो गये हो, ईर्ष्या और आसक्ति ने तुम्हें अन्धा कर दिया।

मनोहर—तुमने यह जाल इस चालाकी से बुना है कि शशि इसमे फडफड़ाती रहेगी निकल न सकेगी!

हरि—मनोहर!

मनोहर—मैं कहता हूँ........

हरि—तुम देखते नहीं किरण की दशा कितनी शोचनीय है? वह मरने को है और तुम अपनी इन विष मे बुझी हुई बातों से मेरा हृदय छलनी करने आये हो।

मनोहर—तुम शशि को न अपनाते हो न छोड़ते हो, और मैं त्रिशकु की भाँति बीच ही में लटका हुआ हूँ...तुम्हारी इस विरक्ति में, मैं जानता हूँ, कितनी आसक्ति छिपी हुई है—वाह रे अन्यमनस्कता ! वह बनारस से तुम्हे मिलने के लिए आई है, वह जब से बैठी है तुमसे मिलने को व्यग्र है—खेल में वह योग नहीं दे रही, बात-चीत मे वह योग नही दे रही—और तुम पल भर को उससे बात करने नहीं आ सके ..

हरि—किरण की दशा शोचनीय है, तुम्हारे क्या आँखें नहीं हैं !

मनोहर—वह फड़फड़ाती रहेगी, न जियेगी, न मरेगी, किरण की सूखती हुई बीमार देह का लहू अपनी कविताओ के द्वारा तुमने शशि के शरीर में डाल दिया है।

[किरण हाथ हिलाती है]

हरि—(क्रोध से) तुम जाओ। तुम सब चले जाओ। यह होश मे आ रही है।

किरण—(सोये सोये से, डरे-डरे से क्षीण स्वर से) मैं चिक नहीं चाहती। चिक नहीं चाहती। मेरी रोशनी बन्द न करो। मेरी रोशनी...

हरि—(उसके मुँह में दवा टपकाता हुआ) कौन तुम्हारी रोशनी बन्द करता है ? यह देखो—चिक उठी हुई है और चाँद की पवित्र, स्निग्ध, ज्योत्स्ना तुम्हारे साथ खेल रही है। मैंने तुम्हारी चारपाई के नीचे ईंटे रख दी हैं। उठो देखो—

माँ—यह न उठेगी। देख नहीं रहे इसके हाथ मुड़ रहे हैं। इसे धरती पर उतार लो।

हरि—नहीं, मैं इसे धरती पर न लिटाने दूँगा—निर्मम, निर्दय, ठंडी धरती पर....

किरण—मेरी रोशनी बन्द न करो। मेरी रोशनी बन्द न करो.. .

हरि—कौन तुम्हारी रोशनी बन्द करता है?

किरण—शशि मेरी रोशनी बन्द कर रही है।

[चिक आप से आप गिर जाती है। कमरे में, फिर अँधेरा हो जाता है। केवल दिये का प्रकाश है।]

हरि—शशि ?

किरण—(जैसे दूसरी दुनिया से) वह मेरी रोशनी बन्द करने के लिए गहरा नीला टाट रँग रही है। मैं चिक नहीं चाहती। मैं चिक नहीं चाहती। मेरी रोशनी...

[आँखें बन्द कर लेती है।]

हरि—(चिक उतार कर फेंक देता है) मैंने चिक उतार दी है... किरण.. किरण... .

माँ—(नाड़ी देखते हुए) किरण कहाँ, किरण खत्म हो गई। मैंने कहा था न इसे धरती पर उतार लो।

(राधे दरवाजे से झाँकता है।)

राधे—शशि ने पूछा है मैं यहाँ आ सकती हूँ ?

हरि—(उन्माद के स्वर में) वह नहीं आ सकती। वह कभी नहीं आ सकती। देखते नहीं मैंने चिक उतार दी है। मैंने चिक उतार कर फेंक दी है.. ...

[पर्दा सहसा गिर पड़ता है।]

चमत्कार

पात्र

तुर्की टोपी वाला

लम्बी चोटी वाला

कृपाण वाला

घंटी वाला

श्वेत डाढ़ी वाला

और

अन्य राह चलते लोग

स्थान

एक बड़े नगर का एक बड़ा बाजार

समय

दिन

[रंग मंच के बायें कोने में बाइबिल सोसाइटी का महराबदार दरवाज़ा है। महराब के ऊपर सुन्दर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा है :

"यीसू मसीह ने कहा, उठ और कुमारी उठ बैठी।"

यह बाइबिल सोसाइटी एक बड़े खुले बाज़ार में है। रंग मंच के दायें कोने में बाइबिल सोसाइटी के साथ की दुकान का आधा बोर्ड (जिस पर उप्पल ऐंड— लिखा हुआ है) और दरवाज़े का आधा भाग साफ़ दिखाई देता है। बाइबिल सोसाइटी और उप्पल एंड कम्पनी की सीमाएँ स्टेज के मध्य आकर मिलती हैं। बाइबिल सोसाइटी की बिल्डिंग का रंग लाल है और दूसरी दुकान का मोतिया। दोनों दुकानों के आगे फुटपाथ है, जिस पर बिजली का एक खम्बा भी उप्पल एंड कम्पनी के सामने दिखाई देता है। फुटपाथ के इस ओर बायें से दायें अथवा दायें से बायें को जानेवाली तारकोल की सड़क है।

पर्दा उठने पर बाज़ार साधारण रूप से चलता दिखाई देता है। लोग अपने ध्यान में मग्न उधर से इधर और इधर से उधर आ-जा रहे हैं। एक फ़ैशनेबुल लेडी उप्पल एंड कम्पनी के दरवाजे में प्रवेश करती है। एक डाकिया बाइबिल सोसाइटी के दरवाज़े में से बाहर आता है।

कुछ क्षण बाद बायीं ओर से एक पतला-दुबला व्यक्ति सिर पर तुर्की टोपी रखे, गले में खुले गले की मैली-फटी कमीज़ और कमर में टख़नों से ऊँचा, कटे तंग, घुटनों पर (निरन्तर पहनते रहने के कारण) कुछ आगे को बढ़ा हुआ उटुंग पायजामा पहने, सिगरेट के एक ख़ाली टीन के बक्स को रस्सी से खींचता हुआ प्रवेश करता है और दोनों दुकानों के मध्य आ खड़ा होता है।

निमिष भर के लिए वह राह-चलते लोगों को देखता है, फिर ऊँचे स्वर से बाइबिल सोसाइटी के दरवाजे पर लिखे हुए मोटो (Motto) को पढ़ता है।]

तुर्की टोपी वाला—यीशू मसीह ने कहा—उठ ! और कुमारी उठ बैठी। (सोसाइटी के दरवाजे की ओर देखकर) बुलाओ अपने यीशू मसीह को कि मेरी इस मुर्दा मछली को जिन्दा करे। (फिर दाँत पीसते हुए मुँह चिढ़ाकर और राह चलतों को सुनाकर) यीसू मसीह ने कहा—उठ ! और लड़की उठ बैठी। (फिर दरवाजे की ओर देखकर) बुलाओ अपने उस मसीह को कि इस मुर्दा मछली को जिलाए।

[उसकी आवाज़ सुनकर तीन-चार राह चलते इकट्ठे हो जाते हैं, जिनमें एक लम्बी चोटी वाला भी है।]

तुर्की टोपी वाला—मसीह की सबसे बड़ी करामात यह थी कि वह मुर्दों को जिन्दा कर देते थे। उन्होंने जेरस की मुर्दा बेटी को छुआ और वह उठ बैठी। तो क्यों आकर मेरी इस मुर्दा मछली को नहीं जिलाते ? (दरवाजे की ओर देखकर) निकालो अपने उस मसीह को कि मेरी इस मुर्दा मछली को जिन्दा करे।

[कुछ और लोग आ जाते हैं, जिनमें एक कृपाण वाला भी है]

लम्बी चोटी वाला—(आगे बढ़कर) क्यों भई क्या बात है ?

तुर्की टोपी वाला—"अल मुबलग" में मैंने एक मार्के का मजमून लिखा था, जिसमें ईसाई धर्म की बुनियादी खामियों पर दलील के साथ बहस की थी। मेरे इस लेख का कोई माकूल[1] जवाब देने के बदले (सोसाइटी के दरवाज़े की ओर देखकर) पादरी बधावा राम ने अपने अखबार में रसूले पाक की करामातों पर एतराज[2] किया है। मेराज[3] की असलियत को समझना पादरी बधावाराम के बस की बात नहीं। कौन नहीं जानता कि खुदावन्दे करीम ने अपने रसूल को सातों आसमानों की सैर कराई और वह भी इतने कम अर्से में कि जिस दरवाज़े से रसूले पाक गये थे उसकी कुण्डी उनके वापस आने पर अभी हिल रही थी। इस मोजजे[4] के कई मतलब निकल सकते हैं, लेकिन उन पर गौर[5] करने के बजाय पादरी बधावा राम ने ओछे और लगव[6] एतराज किये हैं।

कृपाण वाला—पर मियाँ, इस टीन के डिब्बे में क्या है ?

तुर्की टोपी वाला—मछली।

कृपाण वाला—मछली !

तुर्की टोपी वाला—हाँ मुर्दा मछली ! मैं पादरी बधावा राम को चैलेंज देने आया हूँ कि अगर सचमुच यीसूमसीह में यह ताकत थी कि वह मुर्दों को जिन्दा कर देते थे और अगर सचमुच वह खुदा के बेटे थे,

---

१ माकूल = युक्तियुक्त, जिसे अक्ल कबूल करे। २ एतराज = आपत्ति। ३ मेराज = मुहम्मद साहिब का एक चमत्कार। ४ मोजजा = चमत्कार। ५ गौर करना = सोच विचार करना। ६ लगव = लगो = लचर।

तो पादरी बधावा राम अपने उस खुदा के बेटे को बुलाए कि वह आकर मेरी इस मुर्दा मछली को जिलाए और अपनी मसीहाई[1] का सबूत दे।

लम्बी चोटी वाला—पादर बधावा राम! (चोटी पर हाथ फेरता हुआ, हँसते हुए अपने पास खड़े एक दूसरे लम्बी चोटी वाले साथी से) अरे! यह वही बधावाराम है जिसे हमने शुद्ध किया था; परन्तु जो हमारे कठिन सिद्धान्तों पर पूरा न उतर सका था।

[पादरी बधावाराम सोसाइटी के दरवाज़े से झाँकते हैं।]

—(पादरी की ओर देखकर) हाँ पादरी साहिब, बुलाइए अपने खुदा के बेटे को कि वह अपना चमत्कार दिखाकर इस मृत मीन को पुनः जीवन प्रदान करे (लोगों को सुनाकर) यदि भगवान् अमर और सर्वव्यापक हैं तो भगवान का पुत्र अमर और सर्वव्यापक क्यों न होगा और क्यों न यहाँ आकर इस मृत-मत्स्य में अपने परस से जीवन का सञ्चार करेगा।

[कुछ और लोग भीड़ में आकर सम्मिलित हो जाते हैं। श्वेत डाढ़ी वाला एक वृद्ध चुपचाप भीड़ के एक ओर खड़ा तमाशा देखने लगता है।

एक हाथ में बैग उठाए और दूसरे में घंटी लिए एक व्यक्ति सबसे पीछे आकर खड़ा हो जाता है।]

तुर्की टोपी वाला—(घंटीवाले को देखकर नारा लगाता है) आये खुदा का बेटा और मेरी इस मुर्दा मछली को जिन्दा करे।

(पादरी बधावा राम फिर अन्दर चले जाते हैं)

लम्बी चोटी वाला—(शिखा पर हाथ फेरते हुए) एक सभा में

---

१ मसीहाई = मसीहा की शक्ति अर्थात् मुर्दों को जिलाने की शक्ति।

पादरी बधावा राम ने आर्य-समाजियों को मूस-पंथी कहा था—चूहे को शिव-लिंग पर से प्रसाद उड़ाते हुए देखकर महर्षि को जो स्वर्गिक प्रेरणा मिली थी, उसका उपहास उड़ाते हुए उनके व्यक्तित्व की निन्दा की थी (भाषण देने के अन्दाज़ में हवा में हाथ घुमाते हुए और एड़ियाँ उठाते हुए) महर्षि दयानन्द पूर्ण ब्रह्मचारी थे, उनके मुख पर अद्भुत, अलौकिक तेज और उनके अंगों में अपार शक्ति थी। अपने योगबल से वे ऐसी आश्चर्य-जनक बातें कर सकते थे, जो दूसरों को चमत्कार मालूम होती थीं। जालधर में टिक्का साहिब की गाड़ी को उन्होंने पीछे से पकड़ लिया। घोडे शक्ति लगाकर थक गये। लेकिन वह तो ब्रह्मचारी का बल था, टस से मस न हुई गाड़ी। चमत्कार यह होता है। इसे बुद्धि स्वीकार करती है, परन्तु...... ।

कृपाण वाला—(जोश से आगे बढ़कर) इन्हीं पादरी साहिब ने हमारे बाबा साहिब बाबा गुरु नानक के चमत्कारों पर भी आलोचना की थी और मोदी खाने की बात को लेकर मजाक उड़ाया था। वे तो सत्यावान* पुरुष थे। ननकाना साहिब के लोग इस बात को अच्छी तरह जानते हैं। गुरु साहिब के बहनोई जय गोपाल लोधी सुल्तान के यहाँ नौकर थे। सच्चे पादशाह† के पिता कालूराम ने अपने पुत्र को आवारा समझ कर जय गोपाल से कहा—"भई यह तो साधु-सन्तों की संगति में रहकर आवारा और निकम्मा हो रहा है। इसे कहीं ठिकाने पर बिठाओ।" जय गोपाल ने सच्चे पादशाह की सिफारिश करके उन्हें मोदी खाने में नौकर करवा दिया। बाबा ठहरे दरियादिल फकीर—वे क्या जानते हिसाब किताब, जो भी उनके दरवाजे पर आता ख़ाली हाथ न जाता, साधु-सन्त, पीर फ़कीर, सब मोदी खाने से मनमानी ख़ैरात पाने

---

* सत्यावान = शक्तिशाली। † सिक्ख बादशाह को पादशाह कहते हैं।

लगे। होते-होते यह खबर सुल्तान लोधी तक जा पहुँची कि तुम्हारा तो मोदीखाना ही लुटा जा रहा है। बस सुल्तान ने जाँच-पड़ताल का आदेश दिया। मोदीखाने का हिसाब होने लगा। गुरु साहिब तराजू लेकर तोलने लगे। एक-दो तीन-चार . . .तेरह पर जाकर रुके, आगे गिनने के बदले उन्होंने...तेरह.. तेरा.. मैं तेरा ..मैं तेरा का पाठ शुरू कर दिया। सारा मोदीखाना तुल गया और जितना गुरु साहिब के चार्ज में दिया गया था। उससे भी अधिक निकला। (दरवाज़े की ओर देखकर) पादरी बधावा राम एक जलसे में कह रहे थे—यह कैसे सम्भव हो सकता है ? मैं उनसे पूछता हूँ, यीसु मसीह ने किस तरह रोटी के दो टुकड़ों और तीन मछलियों को बरकत देकर उनसे अपनी सहस्रों भेड़ों की भूख मिटाई थी और सब के खा चुकने पर भी छः टोकरे भर रोटियाँ और मछलियाँ बच रही थीं ?

तुर्की टोपी वाला—(नारा लगाता है) आये मसीह और मेरी इस मुर्दा मछली को जिन्दा करे !

घंटी वाला—(घंटी बजाता और भीड़ को चीर कर आगे आता हुआ) मैं मछली जिन्दा करता हूँ ! मैं मछली जिन्दा करता हूँ !!

(लोग चकित से उसकी ओर देखते हैं)

—(पूर्ववत घंटी बजाता और आगे बढ़ता हुआ) मैं मछली जिन्दा करता हूँ ! मैं मछली जिन्दा करता हूँ !!

[भीड़ के मध्य आकर यही आवाज़ लगाता हुआ घूमता है, जिससे एक छोटा सा गोल घेरा बन जाता है। तुर्की टोपी वाले मियाँ साहिब और घंटी वाले महोदय इस घेरे के मध्य रह जाते हैं।

घंटी वाले ने महीन मलमल का कुर्ता पहन रखा है, जिसमें से बनयान

झलक रही है। कमर में महीन धोती बाँध रखी है। पाँव में बढ़िया चम-चमाते पम्प शू हैं। शरीर हृष्ट-पुष्ट और मूँछें लम्बी और नोकों पर ऊपर को मुड़ी हुई हैं। आँखों में ऐसी चमक है जो उसके चातुर्य का पता देती है। उसकी तुलना में तुर्की टोपी वाला मात्र एक भिखारी दिखाई देता है।

घंटी वाला घेरे के मध्य अपना बैग रख देता है और एक बार फिर घंटी बजाता हुआ घेरे में चक्कर लगाता है]

घंटी वाला—मैं मछली जिन्दा करता हूँ मैं मछली जिन्दा करता हूँ, मैं मछली जिन्दा करता हूँ! (क्षण भर केवल घंटी बजाता है) इसी क्षण आपके देखते-देखते इस मछली को, इस मृत मछली को जीवित कर दूँगा, केवल मुझपर भरोसा रखिए—मुझपर विश्वास रखिए!

श्वेत डाढ़ी वाला—(जैसे अपने आप से) हम लोगों में विश्वास ही का तो अभाव है।

घंटी वाला—(एक बार फिर घंटी बजाता हुआ) लेकिन मेहरबान इससे पहले कि मैं इस मरी हुई मछली को जिलाऊँ, मैं मरे हुए इन्सानों में जान डालना चाहता हूँ। मेहरबान, मनुष्य उस परमात्मा, उस वाहे गुरु*, उस खुदा की सृष्टि में सब से बड़ी, सबसे उत्तम रचना है। उनके प्राण सहस्रों—सहस्रों ही नहीं, लाखों मछलियों के प्राणों से मूल्यवान हैं। मछली को जिलाने से पहले मैं उन मृत-प्रायः इंसानों को जिन्दा करना चाहता हूँ।

कृपाण वाला—इन्सानों को!

घंटी वाला—मेहरबान! आज जिन्दा इन्सान कहाँ हैं? सौ में से किसी एक के चेहरे पर जीवन की झलक दिखाई देगी—पीले

---

* वाहे गुरु = सिक्ख परमात्मा को वाहे गुरु कह कर पुकारते हैं।

जर्द चेहरे, थकी उदास आँखे, सूखे सड़े ठठरो से शरीर ! ये जीते-जागते इन्सान हैं ? मेहरबान, ये चलते-फिरते मुर्दे हैं—वह दमखम, वह बल-वीर्य, वह साहस और हिम्मत अब कहाँ है ? (घंटी बजा कर) और मेहरबान ऐसा क्यों न हो ? आज वही चीजे हमारी पहुँच से बाहर हैं जो हमारे जीवन के लिये अत्यधिक जरूरी हैं। (और भी ऊँचे स्वर में छाती पर हाथ रखते हुए) मेहरबान! कितने लोग हैं जो सीने पर हाथ रख कर कह सकते हैं कि वे पवित्र दूध और घी प्रयोग करते है। खालिस दूध-घी जनता के लिए ऐसी नियामत बन गया है, जिसका पाना परलोक मे सम्भव हो तो हो, इस लोक में तो नहीं।

श्वेत डाढ़ी वाला—सच है भाई, सच है !

[बाज़ार चलता रहता है, कुछ लोग आते और कुछ जाते रहते हैं।]

घंटी वाला—दूध-घी दूर, हमे तो स्वच्छ जलवायु भी प्राप्त नहीं। यह मछली मुर्दा है। क्यों ? इसलिए, कि यह पानी के बाहर है। इसे इसका भोजन प्राप्त नही। हममे से अधिकाश जीते जी मुर्दा हैं। क्यों ? इसी लिये कि हमें हमारी खुराक प्राप्त नही। गाँवों में जाइए। अब भी आप को छः छः सात-सात फुट ऊँचे, ३७-३७ इंच चौडे सीनो वाले जवान मिलेगे। स्वच्छ वायु, पवित्र दूध-घी और निर्मल पानी—कौन है माई का लाल जो सीने पर हाथ मार कर इस बात का दावा कर सकता है कि उसे ये सब प्राप्त हैं।

[श्वेत दाढ़ीवाले वृद्ध प्रभावित होकर सिर हिलाते हैं कि ठीक है भाई तू जो कह रहा है सच कह रहा है।]

घंटी वाला—(घंटी को फिर एक बार बजाता हुआ) लेकिन मेहरबान ! यह गरीब जानवर अपनी मौत का आप जिम्मेदार नहीं।

इसे तो मियाँ साहिब नदी से पकड़ लाए है। इसका बस चलता तो यह अपने हाथों अपने जीवन को न जाने देता, किन्तु ये हमीं मनुष्य हैं जो अपने हाथों अपने जीवन को, जीवन के अमूल्य सार को, अपने हाथों अपने बचपन या जवानी में गँवा देते हैं। मेहरबान ! जो भोजन खाते हैं उसका रस बनता है, रस से रक्त, रक्त से माँस, माँस से चरबी, चरब से हड्डी, और हड्डी से गूदा और इस गूदे से वह जौहर बनता है जिससे हमारे मन-मस्तिष्क को शक्ति मिलती है। जिससे पुरुष पुरुष कहलाता है। यही वह रत्न है जो हम अपनी मूर्खता से अपने बचपन अथवा युवावस्था मे अपने हाथो खो देते हैं और चलते-फिरते मुर्दे दिखाई देते हैं। इस बात का श्रेय श्री गुरु महाराज श्री १०८ स्वामी आलोकानन्द जी वैद्यराज को है कि उन्होंने जवानी के इस सार को कायम रखने और पुरुष को फिर से पुरुष बनाने के लिए वह नुस्खा हासिल किया है जिसके सेवन से मरे से मरा मनुष्य भी जवानी की अँगड़ाई लेकर जाग उठता है।

(फिर घेरे मे चक्कर लगाता है)

—मैं मछली जिन्दा करता हूँ ! मैं मछली जिन्दा करता हूँ !! (फिर अपने स्थान पर खड़े होकर घंटी बजाते हुए) मियाँ साहिब इस मछली को मेरे सामने ले आइए।

(मियाँ साहिब बक्स को खींच कर उसके सामने लाते हैं)

—हाँ मेहरबान, इस मैदान में इस मछली को रख दीजिए ! मैं पलक झपकते, आप के देखते देखते, इसे जीवित कर दूँगा। ऐसी-ऐसी औषधियाँ गुरु महाराज ने तैयार की कि प्रायः मरते मरते लोग उठ खड़े हुए। साँप काटे की एक अचूक औषधि मेरे पास है। मालवे और माझे के ऊसर इलाक़ों में बीसियो हृष्ट-पुष्ट जाट हर साल साँपों

का शिकार हो जाते थे। गुरु महाराज के आदेश पर मैंने एक बार वहाँ जाकर दवा बाँटी। क्या मजाल जो पिछले दस वर्ष में साँप काटे से एक भी मौत उन इलाकों में हुई हो (बैग से एक नीली सी टिकिया निकालता है) मेहरबान ! जिस तरह लोहा लोहे से कटता है, उसी प्रकार विष का प्रभाव भी विष ही से दूर होता है। गुरु महाराज कहा करते थे—विष के मारने को विष महाबली है—इसीलिए उन्होंने कई तरह के जहरों को साँप के विष में खरल करके, दिन रात के परिश्रम के बाद, यह टिकिया तैयार की। जहाँ कहीं साँप, बिच्छू, कनखजूरा, मधुमक्खी, भिड़ या कोई दूसरा विषैला जानवर काट जाए, थूक अथवा पानी में घिस कर इसे लगा दीजिए। मिनटों में जहर का असर दूर हो जायगा। (घंटी बजाता हुआ) जिस भाई को जरूरत हो हाथ खड़ा करे। गुरु महाराज ने कहा था—बेटा जीवन देना, पर दाम न लेना ! इस टिकिया का मूल्य लेना मेरे लिए महापाप है ! (बैग से चन्द और टिकियाँ निकालता है) जिस जिस भाई को आवश्यकता हो हाथ खड़ा करे !

[टिकिया बाँटने लगता है। धीरे-धीरे सबके सब हाथ खड़े कर लेते हैं।]

—(रुक कर) आप सब लोगों ने हाथ खड़े कर दिए ? (छोटे छोटे दो लड़कों की ओर देख कर) यह कोई मिठाई की टिकिया नहीं, जहर की टिकिया है।

[लोग हँसते हैं—लड़के लज्जित होकर हाथ नीचे कर लेते हैं।]

—मेहरबान ! इस तरह काम नहीं चलेगा। उन लोगों को, जिन्हें दवा की जरूरत है, दूसरे लोगों से अलग करने का एक गुर श्रीगुरु महाराज हमें बता गए हैं (घंटी बजाते हुए) देखिए मेहरबान ! इस

टिकिया का मूल्य चार आने है, मनुष्य के प्राणों का मूल्य लाखों रुपए से भी अधिक है, किन्तु इन प्राणों को बचानेवाली इस टिकिया का मूल्य सिर्फ चार आने है। गुरु जी ने कहा था—बेटा जीवन देना पर दाम न लेना। मित्रो! यह चार आने दाम नहीं, यह केवल लागत है।—इस टिकिया की कीमत सिर्फ चार आने है, अब जिन महाशयों को जरूरत हो हाथ खड़े करें।

[कुछ लोग हाथ गिरा देते हैं, कुछ इस असमंजस में हैं कि हाथ खड़ा रखें या न रखें। उन्हीं को सम्बोधित करके ..]

—चार आने। इस टिकिया के दाम मात्र चार आने हैं। जिन्हें ज़रूरत हो सिर्फ वही हाथ खड़ा रखें।

[केवल पाँच-छः व्यक्ति हाथ खड़ा रखते हैं, शेष गिरा देते हैं।]

—लाइए जनाब चार-चार आने! (पैसे इकट्ठे करते हुए) लेकिन हाथ खड़े रखिएगा मेहरबान।

[सब पैसे इकट्ठे कर लेता है और एक विचित्र उदारता से मुस्कराता है।]

—(हाथ के पैसों को देखते हुए) देखिए जिन मेहरबानों को जरूरत थी उन्होंने मूल्य देकर भी दवा खरीद ली। मित्रो! आपको सचमुच जरूरत है। लीजिए पैसे भी लीजिए और दवाई भी लीजिए।

[जिन-जिन लोगो ने पैसे दिये थे, उनको पैसे और टिकिया दोनों चीज़ें वापस कर देता है।]

—(फिर अपनी जगह आकर उसी उदार मुस्कान के साथ) गुरु महाराज ने कहा था—पुत्र, जीवन देना पर दाम न लेना! (ज़ोर से घंटी बजाते हुए) हाँ तो मियाँ जी आप ही इस मछली को लाए हैं न ?

तुर्की टोपी वाला—जी, मै ही लाया हूँ।

घंटी वाला—जिन्दा लाए थे या मुर्दा ?

तुर्की टोपी वाला—मुर्दा !

घंटी वाला—(एक विचित्र आत्म-विश्वास के साथ) देख लीजिए जिन्दा तो नही हो गई।

तुर्की टोपी वाला—(मछली को उठाकर फिर वही रखते हुए) नहीं जी मुर्दा है।

घंटी वाला—(भीड़ को सम्बोधित करके) मेहरबान ! गुसाई तुलसीदास जी कह गए हैं—"जो गुरु मिले बिरंच सम मूरख हृदय न चेत"—कारण क्या है मेहरबान ? यही कि मूर्ख को अपनी बात के अतिरिक्त किसी दूसरे की बात पर विश्वास नहीं होता और "अकल मर्दां रा इशारा काफ़ीस्त।"* (घंटी बजाता हुआ दायरे मे चक्कर लगाता है) विश्वास कीजिए मेहरबान, यह मछली जो इस समय इस टीन के डिब्बे मे निस्पन्द और निष्प्राण पड़ी है, जीवन के स्पन्दन से फड़क उठेगी। स्वय गुरु महाराज अपनी जवानी मे एक बार इसी मछली की तरह निष्प्राण हो गए थे। उन्होंने स्वय एक बार बताया था कि सन्यास लेने से बहुत पहले, बचपन की कुटेवों के कारण, जवानी ही मे वे अपने पुरुषत्व का खात्मा कर बैठे थे। हकीमो-डाक्टरो से निराश होकर वे पहाड़ों की ओर निकल गए थे कि सम्भव है उन्हे कोई पहुँचा हुआ सन्यासी मिल जाए तो उन की आशा पूरी हो। सितम्बर १८५२ की बात है मेहरबान ! वे गढ़वाल के प्रसिद्ध नगर करण प्रयाग मे पहुँचे। वहाँ एक सराय मे उन्हे एक

* बुद्धिमानो के लिये इशारा काफ़ी है।

देवता-स्वरूप साधु के दर्शन हुए, जिन्होंने न केवल उन्हे पुनः जीवन दान दिया, बल्कि आयुर्वेद मे वह श्रद्धा प्रदान की कि बाद मे गुरु महाराज ने जनता की सेवा के हेतु संन्यास धारण कर लिया और हजारों बल्कि लाखों रोगियो को शक्तिशाली और वीर्य्यवान बनाकर उन्हे दोबारा जीवन की होड़ मे बाजी मारने के योग्य बना दिया। (बाइबिल सोसाइटी की महराब पर लिखे हुए वाक्य को देखकर) यीसू मसीह ने कहा उठ और कुमारी उठ खड़ी हुई ! शायद उनके हाथ मे, उनके परस ही में मसीहाई थी, उनके छूने ही से मुर्दे जी उठते थे, लेकिन यह भी कौन कह सकता है कि उनके पास कोई ऐसी ही अचूक औषधि न होगी जिससे मुर्दे तक जीवित हो उठे। ऐसी ही औषधि उस बर्फ़ सी सफेद डाढी वाले बूढ़े साधु ने गुरु महाराज को प्रदान की। (बैग से सुनहरी गोलियो की एक शीशी निकालता है) यह वह अचूक औषधि है ! (घंटी बजा कर) गढ़वाल की यात्रा की याद मे गुरु महाराज ने इनका नाम "गढवाली गोलियाँ" रखा है। इन गोलियों के सेवन से स्वयं गुरु महाराज न केवल १०५ वर्ष तक जीवित रहे, बल्कि वृद्धावस्था मे भी जवानो से अधिक शक्ति रखते थे, उनकी आँखों की ज्योति इतनी तीक्ष्ण थी कि दस फुट तो क्या बीस फुट के फासिले से चार्ट पढ सकते थे और उनकी बतीसी मरते दम तक कायम रही। (ज़ोर-ज़ोर से घंटी बजाता है।) न केवल यह, बल्कि गुरु महाराज ने असली नुस्खे मे और कई औषधियाँ मिलाकर इसे सब तरह की कमजोरियो के लिए लाभदायक बना दिया है। सिर या शरीर मे चोट लग जाए और मनुष्य दुर्बलता महसूस कर रहा हो, आँखो मे अँधेरा छाया जा रहा हो और बेहोशी की हालत तारी हो—मेहरबान ! गर्म दूध मे एक गोली घोल कर दीजिए, तत्काल शक्ति की लहर-सी शरीर मे दौड़ जाएगी। काम के आधिक्य या गिजा की कमी के

कारण दिमाग कमजोर हो गया हो; रात को नींद न आती हो; स्मरण-शक्ति मंद पड़ गई हो; चीजें रखकर भूल जाते हों; मस्तक में हल्की-हल्की पीड़ा रहती हो; स्नायु कमजोर हो गए हों—सात दिन प्रातःसाय दूध के साथ इन शहदवाली गोलियों का सेवन कीजिए और फिर देखिए कि यह औषधि मसीहाई का असर रखती है या नहीं। फिर वे लोग, जो अपने बचपन या जवानी में अपनी नादानी से अपने जीवन का अमूल्य रत्न गंवा बैठे हों; जिन्हें जीवन से, सौन्दर्य से उपेक्षा हो गई हो; जो लज्जावश किसी से अपने दिल की बात न कह सकते हों; कमजोरी का घुन जिन्हें अन्दर ही अन्दर खाए जाता हो; यदि २१ दिन तक प्रातः सायं इस टॉनिक का प्रयोग करें तो उनकी नसों में जीवन का रक्त बाढ़ पर आई हुई नदी की तरह दौड़ने लगेगा, इतना कि संयम से काम लेना उनके लिये कठिन हो जाएगा। उनकी सब शिथिलता दूर हो जाएगी। जीवन उन्हें सुन्दर और प्रिय लगेगा और जीने को उनका जी चाहेगा (बैग से और शीशियाँ निकालते हुए) गुरु महाराज का कथन है—बेटा जीवन देना पर दाम न लेना। मेहरबान! मेरे पास इस रसायन की केवल कुछ शीशियां ही शेष रह गई हैं। जिन भाइयों को जरूरत हो, हाथ उठाएँ!

(बहुत से लोग हाथ उठा देते हैं)

—(हँसता है) आप सब लोगों को जरूरत है। काश मेरे पास इतनी शीशियाँ होतीं! आप लोगों में से जिनको अत्यधिक आवश्यकता हो, वही हाथ खड़ा रखें। नहीं किसी को भी न मिलेगी।

(कुछ हाथ गिर जाते हैं)

—(एक दृष्टि उठे हुए हाथों पर डाल कर) नहीं, अभी नहीं!

मित्रो, मेरे पास बहुत कम शीशियाँ है। जिन्हे बेहद, जरूरत हो वही हाथ खडे रखे।

(दो चार हाथ और गिर जाते है)

—मेहरबान ! मुझे गुरु महाराज का बताया हुआ गुर आजमाना पड़ेगा। जरूरत वालो को दूसरों से अलग करने का ढंग गुरु महाराज ने मुझे बता रखा है (घंटी को एक बार ज़ोर-ज़ोर से बजा कर) इस जीवनदायिनी दवा की एक शीशी का मूल्य एक रुपया है—एक पखवारे की दवा—तीस गोलियाँ इस शीशी मे बन्द हैं। अब जिस भाई को जरूरत हो हाथ खड़ा करे।

(कुछ हाथ गिर जाते है)

—एक रुपया ! इस जीवनदायिनी औषधि की कीमत सिर्फ एक रुपया !! (एक देहाती नवयुवक से) क्यो बे तेरे पास रुपया है ?

(खिसियानी-सी हँसी के साथ नवयुवक हाथ नीचे कर लेता है।)

—(शेष को गिनता हुआ) एक दो तीन चार...दस ! ओह ! शीशियाँ मेरे पास केवल नौ है। (चोटी वाले से) क्यों ब्रह्मचारी जी आप को क्या आवश्यकता पड़ गई ?

चोटी वाला—(खिन्न होकर) मेरे एक मित्र को चाहिए।

घंटी वाला—(जैसे अपने आप से) गुरु महाराज ने कहा था—बेटा जीवन देना पर दाम न लेना। (ज़ोर से) यह एक रुपया इन गोलियों की कीमत नहीं, सिर्फ लागत है। गढवाल के पहाड़ो से अनमोल जड़ी-बूटियां मँगा कर यह दवाई तैयार की गई हैं। जनता के लाभ हेतु इसे मात्र लागत पर बाँटा जा रहा है (एक बार ज़ोर से घंटी बजाता हुआ दायरे में चक्कर लगाता है) जीवनदायक, शक्तिवर्द्धक,

इन तीस गोलियों का मोल केवल एक रुपया है (क्षण भर चुप खड़ा रहता है) मैं फिर एक वार कहता हूँ, इस वार रुपया वापस न किया जाएगा।

(कोई हाथ नीचे नहीं गिरता)

—तो लाइए एक एक रुपया!

(रुपये इकट्ठे करता है)

—जिन मेहरबानों ने रुपया दिया है वे कृपा कर अपने हाथ खड़े रखें (तुर्की टोपी वाले से) मियां जी देखिए इस बैग में अगर एक शीशी और हो (श्रोताओं से) मैंने अपने लिए रख छोड़ी थी, परन्तु गुरु महाराज कहा करते थे—बेटा किसी दूसरे की जान बच रही हो तो अपने प्राणों का मोह न करना।

[मियाँ जी शीशी निकाल लाते हैं और वह सब शीशियाँ बाँट देता है।]

—मेहरबान, मैं आप लोगों का कृतज्ञ हूँ कि आप ने इतना समय मुझे दिया। भगवान से मेरी यही प्रार्थना है कि यह संजीवनी आप को शीघ्रातिशीघ्र स्वास्थ्य लाभ दे।

(बैग उठा कर चलने को होता है)

लंबी चोटी वाला—(शीशी को एक बार इधर उधर से देख कर) परन्तु मुझे तो यह औषधि नहीं चाहिए।

कृपाण वाला—लेकिन भाई वह मछली........

घंटी वाला—(जाते जाते रुक कर) गढ़वाली गोलियाँ पत्थर तक मे जान पैदा कर सकती हैं, फिर मछली तो चीज ही क्या है, लेकिन

मेहरबान ! मछली दूध के साथ गोलियाँ नही निगल सकती। मियाँ जी ! चलिए, इसे हमारे औषधालय मे ले चलिए, वहाँ हम नदी का स्वच्छ जल मँगाएँगे और यदि परमात्मा ने चाहा तो इसे अवश्यमेव जीवन प्रदान करेंगे।

[आगे आगे बैग उठाए घंटीवाला चलता है और पीछे पीछे क्रीतदास की भाँति मियाँ जी हो लेते हैं]

लंबी चोटी वाला—(कुर्ते की आस्तीनें चढ़ाता हुआ) मैं इस लुटेरे को मजा चखा दूँगा।

[भवें चढ़ाये उनके पीछे चला जाता है। भीड़ छँट जाती है। रंगमंच पर केवल श्वेत डाढ़ी वाला वृद्ध रह जाता है। कुछ क्षण बाइबिल सोसाइटी के मॉटो को देखता रहता है, फिर जैसे अपने आप मुस्कराता है।]

श्वेत डाढ़ी वाला—विश्वास उत्पन्न करने की आवश्यकता है चमत्कार क्या आज नही हो सकते।

(पर्दा सहसा गिर जाता है।)

खिड़की

पात्र

नयना

पारो

लाजो

कासनी

महरी

कुन्दनसिह

[पर्दा उठने से कुछ क्षण पहले दूर से लड़कियो के गाने का स्वर आता है, जो धीरे धीरे समीप आता जाता है]

पूजन चलो वसन्त सखी री आज,
फागन आया रंग भरिया हे सखि
सरसो फूली री
सखी री आज

गाने के मध्य पर्दा हरियाना (पूर्वी पजाब) के एक देहाती घर मे उठता है। नयना अन्यमनस्क सी अपने कमरे की खिड़की में बैठी बाहर की ओर देख रही है। यद्यपि आज वसन्तोत्सव है, किन्तु उसने सीधे सादे कपड़े पहन रखे हैं। उसकी वसन्ती चुनरी भी एक ओर खूँटी पर लटक रही है। कमरे की सफाई और उसके सामान से पता चलता है कि इस मे रहने वाले को पवित्रता और परिश्रम बड़े प्रिय हैं। खूँटियों पर चरखे, घर के बने मूढ़े और अटेरन टगे हैं। दायीं ओर कोने मे कागजों के बने डूगरे रखे हैं। उनके साथ ही धुनकी हुई रुई का ढेर लगा है, जिसके पास कुछ पूनियाँ बटी पड़ी है।

बायीं दीवार के कोने में रस्सी पर लिहाफ़ तह किए हुए लटक रहे हैं, दीवारों पर दूसरी देहाती आवश्यकता की चीज़ें व्यवस्था से टंगी हैं। नयना की खिड़की बायीं ओर की दीवार मे है, सामने की दीवार के मध्य एक दरवाज़ा है जो बाहर आंगन में खुलता है, पर्दा उठते समय नयना दरवाज़े की ओर पीठ किए अनमनी सी खिड़की के बाहर की ओर देख रही है, गाने का स्वर समीप आ जाता है।]

पूजन चलो बसन्त सखी री आज
फागन आया रग भरिया हे सखि
सरसों फूली री
सखी री आज

घर घर मंगलाचार मदनसिंह
फागन आया रग भरिया

[अत्यधिक समीप, कदाचित नयना की खिड़की के नीचे आकर गाने का स्वर रुक जाता है और लड़कियों के बुलाने की आवाज़ें आती हैं]

एक आवाज़—नयना ! ओ री नयना !!

दूसरी आवाज़—यहाँ खिड़की में क्या गुम सुम बैठी हो, आओ बसन्त पूजने चलें।

(नयना इनकार में सिर हिलाती है)

तीसरी आवाज़—यह कद्दू सा सिर क्या हिलाती हो, हम स्वयं ऊपर आकर तुम्हे ले चलेंगी।

[कुछ क्षण बाद लाजो, पारो और कासनी भागती हुई सी प्रवेश करती हैं। पारो नयना के पीछे से आकर उसकी आँखें बन्द कर लेती है।]

नयना—(हाथ हटाने का प्रयास किए बिना) तग न करो पारो।

पारो—(हाथ छोड़कर उसे कन्धों से हिलाते हुए) चलो न, यहाँ क्या गुम-सुम बैठी हो ?

लाजो—(उसके हाथ को खींचते हुए) चलो भी नयना।

कासनी—अब उठो भी, हमारा तो गला भी बैठ गया तुम्हें बुलाते बुलाते !

नयना—मुझे यहीं बैठी रहने दो।

पारो—देखो सामने मैदान मे सभी चरवाहे अपने ढोर डगर लेकर पहुँच गए हैं।

कासनी—उन के माता पिता हाथों में पाँच पाँच उपले लिए वहाँ जा रहे हैं—पीले साफे और वसन्ती चुनरियाँ—मालूम होता है जैसे वसन्ती नदी ठाठे मारती हुई बह रही है।

लाजो—क्या तुम्हारी चुनरी इस नदी की लहर न बनेगी? अरे, तुमने तो बसन्ती चुनरी भी नहीं पहनी।

पारो—यह क्या अपशकुन है? उठो खिड़की बन्द करो, वसन्ती चीर पहनो और वसन्त पूजा के लिए चलो।

नयना—मेरी चुनरी वह खूँटी पर लटक रही है और मेरी खिड़की खुली है (लम्बी साँस लेकर) यह चार साल से खुली है और न जाने कब तक खुली रहेगी।

पारो—तुम कैसी बाते करती हो?

लाजो—हम सब तुम्हे लेजाकर रहेगी।

पारो—उठो नयना! कहीं बरस भर के बाद तो यह उत्सव आता है। दुख और चिन्ता तो सदा बने रहते हैं, यही एक दिन आता है हँसने हँसाने का।

नयना—मै इसी दिन आँसू बहाती हूँ!

(नीचे से आवाज़ आती है)

—नयना .....नयना.. ...लाजो.....

लाजो—उठो नयना, वह देखो सब शोर मचा रही हैं, और तुम चुपचाप बैठी हो यहाँ।

नयना—मुझे न छेड़ो, मुझे यहीं चुप बैठी रहने दो, तन से न सही मन और नयनों से तो मैं तुम्हारे संग हूँगी।

(नीचे से आवाज़ आती है)

—लाजो...

लाजो—मैं तो चली भई, तुम आओ कासनी जल्दी।

पारो—उठो भी नयना, क्या हो गया तुम्हें ?

नयना—जो पिछले साल हुआ था।

कासनी—(हँस कर) और जो उससे पिछले साल हुआ था।

पारो—आखिर तुम कब तक उसकी प्रतीक्षा करती रहोगी ? यह चौथा बरस है और इन चार बरसों से तुम ने इस उत्सव में भाग नहीं लिया, तुम्हारा हिया कैसा पत्थर का हो गया है।

नयना—मेरे हिये में पैठो तो जानो—वह पत्थर है या पानी !

(नीचे से आवाज़ आती है)

—कासनी !

कासनी—सब उतावली हो रही हैं, उठो नयना।

(नीचे से आवाज़ आती है)

—तुम आती हो तो आओ, हम तो जा रही हैं।

[पार्श्व भूमि में फिर गाने का स्वर आरम्भ हो जाता है।]

कासनी—मैं तो चली, तुम इसे लेकर आओ पारो।

[गाने का स्वर ऊँचा हो जाता है और फिर क्षण प्रति क्षण दूर होता जाता है।]

फागन आया रग भरिया है सखी
सरसों फूली री
सखी री आज
पिया संग खेलो गुलाल मदनसिंह
फागन आया रग भरया

पारो—नहीं नयना यह ठीक नहीं, इस तरह जीवन नहीं विताया जा सकता।

नयना—(भावावेश में) किस तरह नही विताया जा सकता। जीवन ?

पारो—न जाने वह कहाँ होगा, कैसे होगा, और इस बात का भी क्या भरोसा है कि अब तक वह तुम्हारे ही नाम की माला जपता होगा।

नयना—मैं बदन सिंह को जानती हूँ, वह भँवरा नहीं, पतगा है, पख चाहे जला ले, किन्तु अपना प्रेम न छोड़ेगा।

पारो—पतंगे क्या जोत जोत नहीं उड़ते, तुमतो पागल हो,...

नयना—(करुणा से हँसती है) पतगा चाहे किसी और से लौ लगा ले पर लौ तो कही नहीं जाती, जलती ही रहती है।

पारो—कुन्दन सिंह का खयाल करो नयना! बापू उसकी सगाई बॉदनूँ मे करना चाहते हैं, किन्तु वह कान ही नही देता।

नयना—(चुप रहती है।)

पारो—बदन सिंह का क्या ठिकाना नयनी, इतने बरस हो गए, उसकी कोई खोज खबर नहीं मिली। जाने कहाँ है? जाने कैसे है? और कुन्दन सिंह पल पल छिन छिन......

नयना—वह आएगा पारो। जिस दिन बापू ने उसे डाटा था और उसने पोपा नगर छोड़ देने का निश्चय किया था उस दिन वह मुझ से इसी खिड़की के नीचे मिला था। मुझे वह साँझ भली भाँति याद है—वसन्त उत्सव हो चुका था, पूरब की ओर नीले नीले बादल घिर आए थे और सूरज की डूबती हुई किरणों ने उनकी कोरों को रंग दिया था। तेज बयार बहने लगी थी और पगडंडियों में बिखरी हुई सरसों की मुरझाई पत्तियाँ हवा में उड़ रही थीं, किन्तु, उस के मुख पर लोहे जैसे कठोर निश्चय की छाप थी। उसने कहा था—नयना मैं आऊंगा। मेरी प्रतीक्षा करना, मैं तुम्हारे जोग बन कर आऊंगा।

पारो—और कुन्दन के मन में भी तो यही बात समा गई है। वह भी तो तुम्हारे जोग बनना चाहता है। तुम्हारे लिए उस ने क्या नहीं किया? तुम्हारे लिए वह क्या नहीं कर सकता! कहीं तुम्हारा नाम आ जाता है तो उसका मुख खिल उठता है। कोई तुम्हारी बुराई करे तो उसकी आँखों में लोहू उमड़ आता है। तुम्हारे काम की, तुम्हारे बल-पराक्रम की, तुम्हारे उद्यम परिश्रम की, तुम्हारी भक्ति भावना की प्रशंसा करते उसकी जीभ नहीं थकती। भाभियाँ सौ सौ बातें बनाती हैं, किन्तु वह सदा तुम्हारी सफाई देता है—"उस जैसी कोई बन कर तो दिखाए"—वह कहा करता है—"बदन भाई को गए आज चार बरस हो गए, पर वह अभी तक उसके नाम की माला जप रही है। उसे किस बात की कमी है—अनाज से उसकी बखारें भरी हैं, रुपये पैसे से उसकी तजोरियाँ अटी पड़ी हैं; उसके संकेत-मात्र पर बीसियों गबरू उसके चरणों

पर अपने प्राण निछावर कर सकते हैं, पर वह किसी की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखती। सच नयना, तुम्हारी प्रशंसा करते करते जैसे उसकी आँखों में चमक आ जाती है। मुझे तो उस पर तरस आया करता है।

नयना—(चुप)

पारो—और चाँदनूँ वालों की बात पर उसे आग लग जाती है। वे भले मानुस हैं, तीन सौ बीघे धरती है उनकी और फिर घर में सब को आनन्दी पसन्द है, किन्तु वह तो तुम्हारी ओर आस लगाए बैठा है। जब तक यह आसा नहीं टूटती, वह किसी दूसरी ओर आँख उठा कर भी न देखेगा।

नयना—(चुप)

पारो—तुम उसे कोरा जवाब भी तो नहीं देतीं। उसे कुछ आसा होगी ही। मेरी बात का बुरा न मानना नयना। उसे अपना लो या जवाब दे दो—कोरा जवाब दे दो। वह मेरा भाई है, किन्तु मैं यह कोरा जवाब पसन्द कर लूँगी।

नयना—मेरी समझ में नहीं आता मैं क्या करूँ? कुन्दन को मैं सदा भाई की तरह मानती आई हूँ। बदन सिंह के जाने के बाद धीरे धीरे वह आगे बढ़ आया है, किन्तु मैं बदन सिंह का ध्यान नहीं छोड़ सकी और तुम मेरी इतनी अच्छी सहेली हो पारो, मैं तुम्हारी इतनी कृतज्ञ हूँ तुम्हारे और कुन्दन के मुझ पर इतने एहसान हैं। और...और . मैं उसे कैसे ठुकरा दूं।

पारो—तुम उसे कोरा जवाब दे दो।

नयना—जब वह मेरे पास बैठा चुपचाप शून्य में तकता रहता है तो मुझे उस पर दया हो आती है।

पारो—तुम उससे उपेक्षा नहीं करतीं नयना। तुम उसे पसन्द करती हो।

नयना—हम सब बचपन में साथ साथ खेले हैं......

पारो—तुम उससे घृणा नहीं करतीं नयना, तुम उसे पसन्द करती हो—तुम उससे प्रेम करती हो।

नयना—मैं बदन सिंह को नहीं भूली।

पारो—हम नहीं जानते—हमारे मन में क्या छिपा है?

नयना—मैं जानती हूँ, मैं बदन सिंह की प्रतीक्षा कर रही हूँ, बरस के एक एक दिन उसकी प्रतीक्षा करती रही हूँ, लेकिन कुन्दन सिंह से मुझे घृणा नहीं, तुम्हारे भाई से मुझे कैसे घृणा हो सकती है?

पारो—तुम मेरी चिन्ता न करो, अपने मन को टटोलो। यदि वहाँ उसके लिए कोई स्थान है तो उसे अपना लो नहीं तो उसे जवाब दे दो—कोरा जवाब दे दो।

नयना—उसने मेरी इतनी सहायता की है, उसने मुझ पर इतने एहसान किए हैं......

पारो—तुम उन एहसानों की चिन्ता न करो, तुम अपने दिल को टटोलो।

नयना—मैं सच कहती हूँ, मैं हर साल, साल के एक एक दिन बदन की प्रतीक्षा करती रही हूँ।

पारो—(**क्रोध को बरबस छिपाने की चेष्टा करते हुए**) लेकिन तुम

उसको भी तो नहीं ठुकराती। तुम साल के एक एक दिन, दिन के एक एक पल वदन की प्रतीक्षा करो, मैं तुम्हे न रोकूंगी, पर उसे भी आसा के बारीक से तार पर न लटकाए रखो नयना !

[पार्शव भूमि में दूर स्त्रियों के गाने की अस्पष्ट सी आवाज़ सुनाई देती है]

—मैं तुम से प्रार्थना करती हूँ नयना, उस बारीक तार को भी काट दो।

(महरी आती है।)

महरी—कुन्दन सिह आए है।

पारो—वसन्त पूजा आरम्भ हो गई है, मैं जाती हूँ। तुम कुन्दन सिह को आज जवाब दे दो। आसा की धीमी धीमी आँच मे तिल तिल करके न जलाओ।

(चलने लगती है।)

नयना—(उठ खड़ी होती है) कहाँ चली हो पारो......

पारो—(जाते हुए) तुम आज उसे कोरा जवाब दे दो।

नयना—(उस के पीछे जाते हुए) तुम कुन्दन सिह को ले जाओ। तुम उसे अपने साथ ही ले जाओ। वह मुझ से उत्सव में चलने को कहेगा......

पारो—(चलते चलते) तुम आज उसे कोरा जवाब दे दो। तुम उसे ठुकरा दो। उसे भली भाँति समझा दो कि तुम्हारे द्वार से उसे कुछ न मिलेगा।

[चली जाती है। नयना फिर खिड़की में आ बैठती है **और**

अन्यमनस्कता से बाहर की ओर देखने लगती है। कुन्दन सिंह प्रवेश करता है।]

कुन्दन—नयना !

नयना—(चुप रहती है)

कुन्दन—नयना ! आज मैं तुम्हे लेने आया हूँ।

नयना—(चुप रहती है)

कुन्दन—नयना, तुम ने वादा किया था।

नयना—(चुप रहती है।)

कुन्दन—तुम आज भी उसी प्रकार उदास और अनमनी सी खिड़की में बैठी हो। तुम्हारी चुनरी उसी तरह खूँटी पर टँगी हुई है। उठो नयना। देखो बसन्त उत्सव अपने पूरे जोबन पर है।

[दूर, मेले से गाने का हल्का हल्का स्वर आता है जो धीरे धीरे ऊँचा होता जाता है।]

रँग रास करो फागन में
हुए पूरन पिछले भाग री

[यह स्वर और मेले में सम्मिलित होने वालों का कोलाहल ऊँचा उठ कर स्टेज पर छा जाता है और फिर सहसा बन्द हो जाता है।]

कुन्दन—देखो, देखो, लड़कियाँ अपने चीर कमर से बाँध रही है। क्या तुम्हारे पैरों में तनिक भी गुदगुदी नहीं होती ?

नयना—(चुप रहती है)

कुन्दन—तुम्हारे ओंठ उन के सुर में सुर मिलाने को नहीं थरथराते ? (दीर्घ विश्वास लेता है) तुम कितना गाया करती थीं !

कितना नाचा करती थी ! तुम्हे क्या हो गया है नयना ? देखो, तुम्हारी सब सहेलियाँ जीवन ऐसे झिलमिलाते वसन्ती कपड़े पहने गा रही हैं, नाच रही है, झूले झुला रही हैं और तुम यह उदास उदास वस्त्र पहने इस खिड़की मे अनमनी सी बैठी हो ।

नयना—तुम जाओ कुन्दन, नाचो गाओ, उत्सव मनाओ ।

कुन्दन—मैं तुम्हारे बिना न जाऊँगा, मैं इस बार तुम्हे लेकर जाऊँगा । तुम ने मेरे साथ प्रतिज्ञा की थी ।

नयना—नहीं कुन्दन मैं न जाऊँगी ।

कुन्दन—तुम कितना गाया करती थी ! नाचा करती थी ! तुम्हे क्या हो गया है नयना ? उठो, चुनरी ओढो, यह खिड़की बन्द कर दो ।

नयना—(दीर्घ निश्वास लेती है) शायद मेरी चुनरी वहीं टँगी रहेगी और मेरी खिड़की सदा खुली रहेगी ।

कुन्दन—देखो उपलों का कितना बडा ढेर लग गया है । सरसों के हारों से वह इतना ढक गया है कि पीले फूलो का ढेर दिखाई देता है । तुम्हारी सब सहेलियाँ पीले पीले फूल केशों मे गूँथे, पीले पीले गजरे हाथों मे पहने, पीली पीली चुनरियाँ हवा मे उड़ाती हुई, वसन्त की देवियाँ बनी नाच गा रही है । तुम किस प्रकार नाचा करती थी !

नयना—तुम मुझे यह सब न सुझाओ, यह सब न सुझाओ कुन्दन ! तुम जाओ !

कुन्दन—यदि तुम न जाओगी तो मै भी न जाऊँगा ।

नयना—मैं चार साल से नहीं जा रही ।

कुन्दन—मैं भी कहाँ जाता हूँ। हर साल जब यह त्योहार आता है, मैं नयी आस लेकर तुम्हारे द्वारे आता हूँ, पर निरास लौट जाता हूँ। चरवाहे अपने अपने ढोर डगर लिए मैदान में इकट्ठे होते हैं: बड़े बूढ़े हाथों में उपले लिए होली का ढेर लगाते हैं: स्त्रियाँ सरसों के हार चढ़ाती हैं: ग्वाले बंसरियाँ बजाते हैं; सब नाचते गाते मौज उड़ाते हैं, केवल मैं अकेला और उदास बेलों और वीरानों में भटकता फिरता हूँ।

नयना—न, अब तुम और न भटको! अब तुम और न घूमो! तुम इस उत्सव में भाग लो। मेरी आशा छोड़ दो। तुम्हारी बहिन ने अभी कहा था......

कुन्दन—मेरी बहिन ने क्या कहा था ?

नयना—यही कि आसा के बारीक से तार के सहारे मैं तुम्हें खींचे लिए आती हूँ।

कुन्दन—मैं अपने आप खिंचा चला आता हूँ।

नयना—पारो ने कहा था—यदि तुमने बदन ही की बाट देखनी है, तो कुन्दन को कोरा जवाब दे दो।

कुन्दन—तुम खुशी से बदन की प्रतीक्षा करो, किन्तु तुमने कहा था . ...

नयना—(शून्य में देखते हुए) चार बरस पहले बापू ने उसका अपमान किया था, 'तुम उसके जोग तो बनो!' उन्होंने उससे कहा था, बापू परिश्रमी आदमी थे, ज़मीन और जायदाद सारी उन्होंने स्वयं पैदा की थी और बेकार, निकम्मे आदमी को वे पसन्द न करते थे, बदन ने

कहा था—"नयना, यदि तुम्हारे पिता इतना कुछ पैदा कर सकते हैं तो क्या मैं नहीं कर सकता !"

कुन्दन—(चुप रहता है)

नयना—(उसी तरह शून्य में देखते हुए) वसन्त की उस सन्ध्या को जब वह बापू से मिल कर मेले से उदास लौटा था, उसने मुझ से कहा था, नयनी, मैं अभी चला जाऊगा, आज ही पोपा नगर छोड़ दूँगा, और जब तक तुम्हारे जोग न बनगा, इस गाँव में पाँव न रखूंगा।

कुन्दन—(चुप रहता है)

नयना—उसने कहा था—"नयनी, मैं इसी वसन्त के दिन आऊँगा और इतना कमा कर लाऊँगा कि मुझे तुम्हारे पिता से तुम्हारे लिए कहने की जरूरत ही न पड़े।"

कुन्दन—मैं यह सब जानता हूँ।

नयना—वह सूबेदार होकर आयेगा (प्रसन्न होकर) वह इतने उपहार लायगा कि मुझसे सम्हाले न सम्हलेगे.........

कुन्दन—तुम वैसी ही बच्ची हो, अभी तक कल्पना-लोक मे बसती हो, भूल जाती हो कि बदन सिह सेना में भरती होकर गया है.. ...

नयना—वह जरूर आयगा, युद्ध मे विजयी होकर आएगा। मैं उसकी बाट देखूंगी।

कुन्दन—तुमने मुझसे कहा था कि यदि इस वसन्त तक वह न आया तो.. तो ..

नयना—तुम मेरे लिए क्या कुछ नहीं करते रहे कुन्दन ! माता पिता की मृत्यु के बाद तुमने मेरी कितनी सहायता नहीं की ! तुम न होते

तो मैं इस प्रकार रानी बनी न बैठी होती, कहाँ कहाँ के रिश्ते नातेदार इस जमीन जायदाद को हड़प करने के लिए नही आए ? तुमने उनसे मामले लड़ने मे, उनके अत्याचारों का सामना करने मे, मेरी सहायता की, जमीन जायदाद का प्रबन्ध करने में मेरा हाथ बटाया......

कुन्दन—तुम क्यों बार बार इसकी याद दिला कर मुझे लज्जित करती हो ?

नयना—और मैं कभी तुम्हे साफ जवाब न दे सकी और पारो कहती है—मैं तुम्हारा साहस बढ़ाती रही हूँ, मैं तुम्हे अपने जाल मे फँसाती रही हूँ.........

कुन्दन—तुमने कभी मेरा साहस नहीं बढ़ाया, तुम सदा निठुर बनी रही हो.....

नयना—मैं बदन सिंह की राह देखती हूँ .. ..

कुन्दन—मैने तुम्हे कब रोका ? बदन सिह क्या मेरा मित्र न था, यदि आज कही वह आ जाए तो मुझसे अधिक प्रसन्नता किसी को न हो। ...

नयना—(चुप रहती है)

कुन्दन—और कौन जानता है कि मैं इसी लिये तुमसे प्रेम नहीं करता। जब बदन यहाँ था तो हम कितने खुश थे ? वह तुम्हे कितना प्यार करता था। तुम कितनी प्रसन्न थीं ! उसके जाने के बाद तुम उदास रहने लगीं, तुम नहीं जानतीं नयनी तुम्हे इस दशा में देख कर मेरे दिल पर क्या बीतती है ? मुझे कितना दुख होता है ? जब मैं देखता हूँ कि प्रातः के भिनसारे मे उठ कर तुम काम मे जुट जाती हो और दिन भर खाने पीने की सुध बुध भूल कर काम मे रत रहती

हो—अपने शरीर की, अपने कपड़ों की, अपने बालों की चिन्ता नही करतीं, नाच गाने, हँसी दिल्लगी, किसी से मतलब नहीं रखती, तो मैं दिल मसोस कर रह जाता हूँ और चाहता हूँ कि किसी तरह भी तुम्हे सुख पहुँचा सकूँ, किसी तरह भी तुम्हें प्रसन्न रख सकूँ......

नयना—(चुप)

कुन्दन—मैंने बदन सिंह की कितनी खोज नहीं की, जब यह पता चला कि वह भर्ती होकर युद्ध में चला गया है तो तुम्हारे दुःख का विचार करके मुझे बड़ी ठेस पहुँची थी। किन्तु इस बात को भी आज तीन बरस हो गए हैं।

नयना—वह अवश्य आएगा। वह इतना कमा कर लाएगा.........

कुन्दन—किन्तु नयना वह सेना मे भर्ती होकर गया है।

नयना—इन चार बरसों में प्रति दिन मैं उसे अपने सपनों में देखती रही हूँ, सोते ही मे नहीं, जागते में भी, सारा सारा साल इस दिन की प्रतीक्षा करती रही हूँ और बसन्त के दिन इस खिड़की में बैठ कर उसकी बाट देखती रही हूँ—मुझे अब भी ऐसा लग रहा है जैसे वह अभी आकर कहेगा, "नयना, मैं आ गया!"

कुन्दन—(हँसता है) पारो मुझसे कहा करती है, "तुम हवा में बसते हो। एक मद्धम सी आसा के सहारे तुम अपना जीवन नष्ट कर दोगे, तुम इसी तरह पल पल, छिन छिन जलते रहोगे और नयना किसी और के घर चली जाएगी.........

नयना—नयना या बदन सिंह के घर जायगी या

कुन्दन—कहो कहो नयना या......

नयना—(हँसती है)—तुम जानते हो.....

कुन्दन—(व्यंग से हँसता है) तो हम दोनों आयु भर कुँवारे रहेंगे। नयना तुम मेरी ओर न देखो, पर जरा अपनी ओर तो देखो—तुम्हारे गेहूँ के पौधों को बालियाँ लग आई हैं; तुम्हारी ईख वसन्त की वायु के परस से सरसरा रही है; तुम्हारी सरसों फूल उठी है; तुम्हारे बागों मे बहार आ गई है, किन्तु स्वय तुम पतझड़ के पत्ते की तरह मुरझाई कुम्हलाई बैठी हो, उठो नयना, उठो, मेरे सग चलो। वसन्त उत्सव... .....

नयना—कुन्दन तुम जाओ। मेरे भाग मे वसन्त उत्सव देखना नही बदा।

कुन्दन—तुमने प्रतिज्ञा की थी कि तुम इस वसन्त को अवश्य चुनरी ओढ़ोगी।

नयना—बसन्ती चुनरी ओढ़ना मेरे भाग मे नहीं, बदन सिह आता तो.. ...

कुंदन—बदन अब न आएगा........

(लाजो हवा के झोंके की भाँति प्रवेश करती है)

लाजो—बदन सिह आ गए।

नयना—आ गए..... .

(कासनी भागती आती है)

कासनी—नयना, बदन सिह आ गए।

लाजो—(खिड़की में सकेत करके) वह देखो वह बच्चों और बच्चियों को उपहार बाँट रहे हैं।

नयना—कहाँ ? कहाँ .. ...

कासनी—वह.. .....

नयना—खाकी वर्दी पहने......

लाजो—वह सूबेदार मेजर बन कर आए है, इतने उपहार लाए हैं, इतने......

कासनी—उनके साथ कई ट्रक भरे हुए है वह देखो, वे सब इधर ही आ रहे हैं।

नयना—कुन्दन, मैं बसन्त उत्सव मे चलूंगी। वह मेरी चुनरी उतारो, मैं जूता पहन लूं। मैं उसे रास्ते मे जाकर मिलूँगी, इस बार का बसन्त उत्सव ..... .

कुंदन—(चुनरी उतार कर देता हुआ) यह लो चुनरी और मुझे आज्ञा दो।

नयना—तुम मेरे सग न चलोगे कुन्दन, अपने वदन भय्या से मिलने।

कुंदन—नहीं नयना, वसन्त उत्सव देखना शायद मेरे भाग्य मे नहीं।

नयना—(खिड़की बन्द करती है) हम तुम पहले की भाँति रहेंगे कुन्दन, भाई बहिन.. ...

कुंदन—नहीं नयना। मैं जाता हूँ। तुमने अपनी खिडकी बन्द कर दी। (दीर्घ निश्वास भरता है) अब मेरे कमरे की खिडकी खुली रहेगी किन्तु वहाँ मेरे आकुल प्राणों के सिवा कोई मेरी बाट न देखेगा।

[चल देता है। नयना किंकर्तव्य विमूढ़ खड़ी है। पर्दा गिरता है।]

सूखी डाली

पुरुष पात्र	स्त्री पात्र
दादा	बेला—(छोटी बहू)
कर्मचन्द	छोटी भाभी—(बेला की सास, इन्दु की माँ)
परेश	
भाषी	मँझली भाभी
मल्लू	बड़ी भाभी
	मँझली बहू
	बड़ी बहू
	रजवा
	पारो

पहला दृश्य

मानव प्रगति के इस युग मे जब व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को अराजकता की हद तक महत्व दिया जाता है और तानाशाही को 'सभ्य' समाज मे अत्यंत निन्दनीय माना जाता है, दादा मूलराज अपने समस्त कुटुम्ब को एक यूनिट (Unit) बनाये, उस पर पूर्ण रूप से अपना प्रभुत्व जमाये, उस महान वट की भाँति अटल खड़े हैं, जिसकी लम्बी-लम्बी डालियाँ उनके आगन मे एक बड़े छाते की भाँति धरती को आच्छादित किये हुए, अगणित घोंसलो को अपने पत्तों में छिपाये, वर्षों से तूफानों और आँधियो का सामना किये जा रही हैं।

वर्षों इस वट की संगति में रहने के कारण दादा वट ही की भाँति महान दिखाई देते है। आयु की ७२ सर्दियाँ गर्मियाँ देख लेने पर भी उनका शरीर अभी तक नहीं झुका और उनकी सफेद-दाढी वट की लम्बी-लम्बी दाढियो की भाँति उनकी नाभि को छूती हुई मानो धरती को छूने का निश्चय रखे हुए हैं।

दादा का बडा लड़का १६१४ के महा-युद्ध मे सरकार की ओर से लडते-लडते काम आया था। इसके बदले में सरकार ने दादा को एक मुरब्बा ज़मीन दी थी। किंतु दादा सरकार की इस कृपा ही पर संतुष्ट नहीं रहे। अपने साहस, परिश्रम, निष्ठा, दूरदर्शिता और रसूख से उन्होंने एक के दस मुरब्बे बनाये। उनके दो बेटे और पोते, ज़मीन, फार्म डेयरी और चीनी के उस कारखाने के काम की देखभाल करते हैं, जो उन्होंने हाल ही मे अपनी जमीन मे लगाया है। सबसे छोटा पोता अभी अभी नायब तहसीलदार होकर इसी कस्बे मे लगा है और कुछ ही दिन हुए उसका विवाह लाहौर के एक प्रतिष्ठित तथा सम्पन्न कुल की सुशिक्षित लडकी से हुआ है।

उनके छोटे पोते परेश का नायब तहसीलदार और उनकी छोटी पोतोहू का सुशिक्षित होना, अपने में दो महत्वपूर्ण बातें हैं। पहली से सरकारी हल्कों में उनकी प्रतिष्ठा और भी बढ जाने की सम्भावना है; गाँव मे उनका और भी आदर होने लगा है, किंतु साथ ही दूसरी से उनके परिवार के लिए संकट भी उपस्थित हो गया है। उनकी तीनो बहुएँ (जो घर में बडी भाभी, मँझली भाभी और छोटी भाभी के नाम से पुकारी जाती हैं) सीधी-सादी महिलाएँ हैं। उन सब मे उनकी पोती इन्दु ही (जिसने गॉव के प्रायमरी स्कूल में बड़ी सफलतापूर्वक शिक्षा पायी है) सबसे अधिक पढी-लिखी समझी जाती है। घर में उसकी चलती भी खूब है और दादा अपनी इस पोती से प्यार भी बहुत करते हैं; किंतु इस ग्रैजुएट छोटी पोतोहू (जो घर मे छोटी बहू के नाम से पुकारी जाती है) के आने से कुटुम्ब के इस तालाब में इस प्रकार लहरें-सी उठने लगीं जैसे स्थिर पानी मे बडी सी ईंट गिरने से पैदा हो जाती हैं।

पर्दा इमारत के बरामदे मे खुलता है। वास्तव मे यह बरामदा घर की स्त्रियों का रांदेवू (Rendezvous—सम्मिलन-स्थल) है। दिन भर इसमें कोलाहल मचा रहता है। कभी घर की स्त्रियाँ धूप लेती हैं; कभी चरखे कातती हैं; कभी गप्पे उडाती हैं; कभी लड़ती-झगडती हैं; और कुछ न हो तो स्नानागार मे पड़े कपड़े ही धोया करती है। यह स्नानागार बाहर के अहाते में है—दायीं दीवार के कोने मे जो दरवाजा है, उसके साथ ही बाहर को रसोई आदि से निबट कर, दोपहर के बाद, घर मे की दो चार स्त्रियाँ प्राय. रोज वहाँ कपड़े धोया करती हैं और निरंतर 'थप-थप' 'धप-धप' की ध्वनि इस बरामदे मे गूँजा करती है।

सामने की दीवार के बायें कोने में एक छोटी-सी गैलरी है जिसमें (दोनो ओर आमने-सामने) पहले मँझली बहू और बड़ी बहू के कमरे हैं

(जिनकी खिड़कियाँ बरामदे में खुलती हैं) फिर मँझली भाभी और बड़ी भाभी के। छोटी भाभी का कमरा (जो इन्दु की माँ और छोटी बहू बेला की सास है) दायीं ओर है जिसका दरवाजा दायीं ओर स्नानगृह को जाने वाले अहाते के दरवाजे की ओर को है। छोटी बहू का कमरा ऊपर की छत पर है और बायीं दीवार में सीढ़ियाँ बनी है, जो ऊपर को जाती है।

सामने की दीवार के साथ, गैलरी के इधर को दो तख्त बिछे हैं। एक-दो चारपाइयाँ दीवार के साथ खड़ी हैं। एक पुराने फैशन की बड़ी आराम-कुर्सी भी सामने की दीवार के साथ लगी हुई है।

दोपहर होने मे अभी काफी देर है। अत., बरामदे मे अपेक्षाकृत निस्तब्धता है; केवल गैलरी से स्त्रियों के जल्दी जल्दी बातें करने की आवाज़ आ रही है। पर्दा उठने के कुछ क्षण पश्चात् इन्दु तेजी से गैलरी से निकलती है और बिफरी हुई-सी दायीं तरफ के तख्त पर बैठ जाती है। उसके पीछे-पीछे बड़ी बहू शात स्वभाव से चलती हुई आती है। इन्दु की भृकुटी चढी है और बडी बहू शात और गंभीर है।]

बड़ी बहू—(इन्दु के कन्धों पर अपने दोनों हाथ रखते हुए) आखिर कुछ कहो भी। क्या कह दिया छोटी बहू ने ?

इन्दु—(चुप)

बड़ी बहू—क्या कह दिया उसने जो इतनी बिफरी हुई हो !

इन्दु—(क्रोध से) और क्या ईंट मारती ?

बड़ी बहू—कुछ कहो भी .

इन्दु—मेरे मायके मे यह होता है, मेरे मायके मे यह नहीं होता (हाथ मटकाकर) अपने और अपने मायके के सामने तो वह किसी को कुछ गिनती ही नहीं। हम तो उसके लिए मूर्ख, गवाँर और असभ्य हैं।

बड़ी बहू--(आश्चर्य से) क्या..... !

इन्दु—बैठक के बाहर मिश्रानी खड़ी रो रही थी। मैंने पूछा तो ज्ञात हुआ कि बहू रानी ने उसे काम से हटा दिया है।

बड़ी बहू—(उसी आश्चर्य से) काम से हटा दिया है। भला क्या दोष था उसका ?

इन्दु—दोष यह था कि उसे काम करना नहीं आता।

बड़ी बहू—(स्तम्भित) काम करना नहीं आता !

इन्दु—उस बेचारी ने कहा भी कि मैं दस पाँच दिन में सब कुछ सीख जाऊँगी। भला के दिन हुए हैं मुझे आपका काम करते ? किन्तु बहूरानी न मानीं। झाड़न उन्होंने उसके हाथ से छीन लिया और कहा कि हट तू, मैं सब कुछ स्वयं कर लूँगी। अभी तक इतना तो सलीका नहीं कि बैठक कैसे साफ की जाती है, पाँच दस दिन में तू क्या सीख जायगी ?

बड़ी बहू—सलीका नहीं.... !

इन्दु—मैंने जाकर समझाया कि भाभी दस साल से यही मिश्रानी घर का काम कर रही है। घर भर की सफाई करती है, बर्तन मलती है, कपड़े धोती है। जाने तुम्हारा कौन-सा ऐसा काम है जो इससे नहीं होता। और फिर मैंने समझाया कि भाभी नौकर से काम लेने की भी तमीज होनी चाहिए।

बड़ी बहू—हाँ, और क्या......

इन्दु—झट से बोली, "वह तमीज तो बस आप लोगों को है" मैंने कहा, तुम तो लड़ती हो। मैं तो सिर्फ यह कहना चाहती थी कि नौकर से काम लेने का भी ढंग होता है। इस पर तुनक कर बोली, "और वह

ढंग मुझे नहीं आता, मैंने नौकर जो यहीं आकर देखे हैं।" फिर कहने लगीं, "काम लेने का ढग उसे आता है, जिसे काम की परख हो। सुबह-शाम झाड़ू देने मात्र से कमरा साफ़ नहीं हो जाता। उसकी बनावट-सजावट भी कोई चीज है। न जाने तुम लोग किस तरह इन फूहड नौकरों से गुजारा कर लेते हो। मेरे मायके मे तो ऐसी गवॉर मिश्रानी दो दिन छोड, दो घड़ी भी न टिकती।"

बड़ी बहू—कहीं उसने ये सब बातें ?

इन्दु—और कैसे कही जाती हैं—जब से आयी है यही तो सुन रहे हैं—नौकर अच्छे हैं तो उसके मायके मे, खाना-पीना अच्छा है तो उसके मायके में, कपड़े पहनने का ढग आता है तो उसके मायकेवालों को, हम तो न जाने कैसे जी रहे हैं (नाक भौं चढ़ा कर) यहॉ के लोगो को खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना कुछ भी नही आता। हमारे नौकर गवॉर, हमारे पड़ोसी गवॉर, हम स्वय गॅवार.. ...

बड़ी बहू—(चकित विस्मित सिर्फ़ सुनती है)

इन्दु—मैंने भी कह दिया—क्या बात है भाभी तुम्हारे मायके की ! एक नमूना तुम्हीं जो हो। एक मिश्रानी भी ले आतीं तो हम गवॉर भी उससे कुछ सीख लेते।

[दायीं दीवार के कमरे से छोटी भाभी (इन्दु की मॉ और छोटी बहू बेला की सास) प्रवेश करती है। उसके पीछे-पीछे रजवा है]

छोटी भाभी—क्यों इन्दु बेटी, क्या बात हुई—यह रजवा रो रही है। कोई कड़ुवी बात कह दी छोटी बहू ने इसे ?

इन्दु—मीठी वे कब कहती हैं जो आज कड़ुवी कहेगी ?

छोटी भाभी—यह आज तुम कैसी जली-कटी बातें कर रही हो ? छोटी बहू से झगड़ा हो गया है क्या ?

रजवा—(भरे हुए गले से) माँजी आज उन्होंने बरबस मुझे काम से हटा दिया......इतने बरस हो गये आपकी सेवा करते, कभी किसी ने इस प्रकार अनादर न किया था। मुझे तो माँजी आप अपने पास ही रखिए। मैं आज से उनका काम न करने जाऊँगी।

छोटी भाभी—वह तो बच्ची है मिश्रानी, तू भी उसके साथ बच्ची हो गयी।

इन्दु—(मुँह बिचकाकर व्यंग्य से) जी हाँ, बच्ची है ! रोटी को चोची कहती है। उसे तो बात ही करनी नहीं आती (क्रोध से) अपने मायके के सामने तो वह किसी को कुछ समझती ही नहीं और फिर गज भर की जबान...

बड़ी बहू—बात यह है छोटी माँ, कि छोटी बहू को हमारा खाना-पीना, पहनना-ओढना कुछ भी पसन्द नहीं। उसे हमसे, हमारे पड़ोस से, हमारी हर बात से घृणा है।

छोटी भाभी—(चिन्ता से) फिर कैसे चलेगा ? हमारे घर में तो मिल कर रहना, बड़ों का आदर करना, अपने घर की रूखी-सूखी को दूसरों की चुपड़ी से अच्छा समझना, नौकरों पर दया और छोटों पर .....

(मँझली बहू बाहर से हँसती हुई प्रवेश करती है)

मँझली बहू—खिहि...खिहि.. खिहि......हा हा हा, ...

इन्दु—क्या बात है भाभी, जो हँसी के मारे लोट-पोट हुई जाती हो ?

मँझली बहू—खिहि... ..खिहि...(हाथ पर हाथ मारती है) हा-हा-हा—हा-हा-हा...

(गैलरी से मँझली भाभी और बड़ी भाभी प्रवेश करती हैं।)

दोनों—क्या बात है जो आज इतनी 'हा हा' 'ही ही' हो रही है।

इन्दु—यह भाभी हैं कि बस हँसे जा रही हैं; कुछ बताती ही नहीं।

मँझली बहू—मैं कहती हूँ......

(फिर हँस पड़ती है)

बड़ी बहू—आखिर कुछ कहो भी।

मँझली बहू—आज भाई परेश की वह गत बनी कि बेचारे अपना-सा मुँह लेकर रह गये...खिहिहि...हा-हा हा-हा—हा-हा-हा......

छोटी भाभी—ओ हो, तुम्हारी हँसी भी बहू ..

मँझली बहू—मैं क्या करूँ—मैं हँसी के मारे मर जाऊँगी छोटी माँ! अभी-अभी छोटी बहू ने परेश की वह गत बनायी कि बेचारा अपना-सा मुँह लेकर दादाजी के पास भाग गया।

बड़ी बहू
इन्दु } —बात क्या हुई ?

मँझली बहू—मैं तो उधर ऊपर सामान रखने गयी थी। बहुत बातें तो मैंने सुनी ही नहीं। बहुत समझ भी नहीं पायी। अंग्रेजी में गिटपिट कर रहे थे। छोटी बहू का पारा कुछ चढ़ा हुआ था। इतना मालूम हुआ कि परेश स्नान कर कमरे में गया तो बहूरानी ने

च० १२

सारा फर्नीचर निकाल कर बाहर रख दिया था। परेश ने कारण पूछा। छोटी बहू ने कहा 'मैं इन टूटी-फूटी कुर्सियों और गले-सड़े फर्नीचर को अपने कमरे में न रहने दूँगी।' परेश कहने लगा, "हमारे बुजुर्ग......" बात काट कर छोटी बहू ने कहा, "हमारे बुजुर्ग तो नंगे-बुच्चे जंगलों में घूमा करते थे तो क्या हम भी उनका अनुकरण करें" (हँसती है), और जो सामान पड़ा था वह भी उठा कर बाहर फेंक दिया।

इन्दु—फिर...फिर...

मँझली भाभी—छोटी बहू ..

छोटी भाभी—यह तो...

मँझली बहू—परेश ने कहा, "इस फर्नीचर पर हमारे दादा बैठते थे, पिता बैठते थे, चचा बैठते थे। उन लोगों को कभी शर्म नहीं आयी, उन्होंने कभी फर्नीचर के गले सड़े होने की शिकायत नहीं की। अब यदि मैं जाकर इसे रखने पर आपत्ति करूँगा तो दादा कहेंगे कि तहसीलदार होते ही लड़के का सिर फिर गया है। (**हाथ झटका कर**) न भाई ! मैं यह बात उनसे नहीं कह सकता।"

मँझली और बड़ी भाभी—हाँ, ठीक ही तो कहा परेश ने।

छोटी भाभी—परेश...मेरा बेटा भला......

मँझली बहू—तब बहू ने कहा, "तो न कहो—मैं तो इस गले सड़े सामान को कमरे के पास तक न फटकने दूँगी। इस बेडौल फर्नीचर से तो नीचे धरती पर चटाई बिछा कर बैठे रहना अच्छा है। मेरे मायके में......"

इन्दु—(क्रोध से) बस, उसे तो अपने मायके की पड़ी रहती है, चौबीसों घड़ी।

मँझली बहू—और छोटी बहू ने अपने मायके के बड़े-बड़े कमरों और उनके बहुमूल्य फर्नीचर का बखान किया। (हँसती है) और महाशय परेश की एक भी न चलने दी। बेचारे भीगी बिल्ली बने दादाजी के पास चले गये—खि हि हि.. खि हि हि...

(हँसती है। दूसरी भी उसके साथ हँसती हैं।)

—मैं तो चुपके से चली आयी (मुँह बिचका कर) जबान है छोटी बहू की या कतरनी...और फिर जब अंग्रेजी बोलने लगती है तो कुछ समझ में ही नहीं आता। परेश बेचारा तो अपना-सा मुँह लेकर रह जाता है। जाने तहसीलदार कैसे बन गया।

इन्दु—बस जबान ही जबान है। बात तो जब है जब काम भी हो। एक काम को कहो तो सौ नाक-भौंह चढ़ाती है। दादाजी ने चार कपड़े धोने को कहा था, वे तो पड़े गुसलखाने में गल रहे हैं।

छोटी भाभी—गुसलखाने में गल रहे हैं! तू उठा क्यों न लायी उन्हें। जा भाग कर उठा ला और फटक कर आँगन में डाल दे। मैं बहू को समझा दूँगी—इस तरह कैसे चलेगा .....(और भी चिन्ता से)..... परेश ने समझाया नहीं उसे?

इन्दु—परेश की तो जैसे वहाँ बड़ी सुनवायी होती है।

(हँसती है)

मँझली बहू—वह मलमल के थान और अबरों* की बात याद है न—अभी तक पड़े हुए हैं। कह-कह कर हार गये परेश महाशय।

---

* अबरा—लिहाफ के ऊपर का कपड़ा।

बहूरानी ने हाथ तक न लगाया उन्हे और वे शरम के मारे ले जाते नही दादाजी के पास। कचहरी में होंगे तहसीलदार, घर में तो अभि-युक्तों से भी गये बीते हो जाते है।

(हँसती है, इन्दु और बड़ी बहू भी हँसती हैं ।)

छोटी भाभी—पर दादाजी के कपड़े......

बड़ी भाभी—तुम भी बहिन बस...क्या इतना पढ़ लिख कर छोटी बहू कपड़े धोयेगी !

इंदु—क्यों ! उसके हाथ नमक मिट्टी के हैं जो गल जायँगे ।

(बाहर से दादा के हुक्का गुड़गुड़ाने की आवाज आती है)

छोटी भाभी—तुम चलो इन्दु—कपड़े फटक कर अहाते में डाल दो। शायद उन्हे जरूरत हो। मागेंगे तो... .....मैं बहू को समझा दूँगी।

(पर्दा गिरता है)

दूसरा दृश्य

[वही बरामदा। दायीं ओर के तख्त पर बिस्तर बिछा हुआ है। दीवार के साथ तकिया लगा है। दादा आराम से तकिये के सहारे बैठे हुक्का पी रहे हैं। उनका मँझला लड़का कर्मचन्द पास बैठा उनके पाँव दाब रहा है। हुक्का पीते-पीते दादा बच्चों को बाहर अहाते मे खेलते हुए देख रहे हैं। स्नान-गृह से नल के जल्दी-जल्दी चलने की आवाज़ आ रही है। शायद कोई बच्चा उसे चला रहा है क्योंकि कर्मचन्द की भृकुटी तन गयी है।

पर्दा उठने के कुछ क्षण बाद तक नल के चलने और हुक्के के गुड़-गुड़ाने की आवाज आती रहती है। फिर—]

कर्मचंद—(क्रोध से) बस करो जगदीश! क्या खट-खट लगा रखी है? जरा आराम करने दो। अभी-अभी खाना खाकर बैठे हैं कि तुम........

दादा—(हुक्के की नली को हटा कर उधर देखते हुए) नहीं नहीं, खेलने दो बच्चों को। (फिर हुक्का गुड़गुड़ाते हैं) बच्चे.. (हँसते हैं) बट की टूटी डाल लाकर आँगन में लगा दी और उसे पानी दे रहे हैं—(हँसते हैं) नहीं जानते कि पेड़ से टूटी डाली जल देने से नहीं पनपती। (हुक्का गुड़गुड़ाते हैं फिर नली छोड़ कर कर्मचन्द से) मैं कहा करता हूँ न बेटा कि एक बार वृक्ष से जो डाली टूट गयी, टूट गयी, उसे लाख पानी दो, उसमें वह सरसता न आयेगी और हमारा यह परिवार बट के इस महान् पेड़ की भाँति है . .

कर्मचंद—लेकिन शायद अब इस पेड से एक डाली टूट कर अलग हो जाय।

दादा—(चिन्ता से) क्या कहते हो ? कौन अलग हो रहा है ?

कर्मचंद—शायद छोटा अलग हो जाय।

दादा—परेश ! पर क्यों,—उसे क्या कष्ट है ?

कर्मचंद—कष्ट उसे तो नहीं, छोटी बहू को है।

दादा—मुझे किसी ने बताया तक नहीं। यदि कोई शिकायत थी तो उसे वहीं मिटा देना चाहिए था। हलकी-सी खरौंच भी, यदि उस पर तत्काल दवाई न लगा दी जाय, बढ़ कर एक बड़ा घाव बन जाती है और वही घाव नासूर हो जाता है, फिर लाख मरहम लगाओ ठीक नहीं होता।

कर्मचंद—मैं अच्छी तरह तो नहीं जानता, पर जहाँ तक मेरा विचार है छोटी बहू के मन में दर्प की मात्रा जरूरत से कुछ ज़्यादा है। मैंने वह मलमल के थान और रजाई के अबरे लाकर दिये थे न ! और सब ने तो रख लिये पर सुना है कि छोटी बहू को पसन्द नहीं आये। अपने मायके के घराने को शायद वह इस घराने से बड़ा समझती है और इस घर को घृणा की दृष्टि से देखती है।

दादा—बेटा, बड़प्पन बाहर की वस्तु नहीं—बड़प्पन तो मन का होना चाहिए। और फिर बेटा, घृणा को घृणा से नहीं मिटाया जा सकता। बहू तभी पृथक् होना चाहेगी जब उसे घृणा के बदले घृणा दी जायगी। लेकिन यदि उसे घृणा के बदले स्नेह मिले तो उसकी समस्त घृणा धुँधली पड़ कर लुप्त हो जायगी। (हुक्का गुड़गुड़ाते हैं) और महानता भी बेटा, किसी से मनवायी नहीं जा सकती, अपने व्यवहार से अनुभव करायी जा सकती है। ठूँठ वृक्ष आकाश को छूने पर भी अपनी महानता का सिक्का हमारे दिलों पर उस समय तक नहीं बैठा

सकता, जब तक अपनी शाखाओं मे वह ऐसे पत्ते नही लाता जिनकी शीतल सुखद छाया मन के समस्त ताप को हर ले और जिसके फूलो की भीनी-भीनी सुगन्ध हमारे प्राणों मे पुलक भर दे।

भाषी—(बाहर से) दादाजी, मल्लू और जगदीश ने मेरा वट का पेड़ उखाड़ दिया (मल्लू से लड़ते हुए चीख़चीख़ कर) क्यों उखाड़ा तूने मेरा पेड़—क्यों उखाड़ा... ?

दादा—पेड़! (हँसते है) बच्चे !! (हँसते हैं) ठहरो भाषी, लड़ो मत बेटा। जाना कर्मचन्द जरा हटाना इन दोनों को.......

(कर्मचन्द जाता है। दादा फिर हुक्के की नली मुँह से लगा लेते हैं—
परेश नीची नज़र किये प्रवेश करता है)

दादा—आओ बेटा परेश, वह मैंने एक दो कपड़े भेजे थे न, तनिक देखना बहू ने उन्हे धो डाला है या नही। धो डाले हों तो ले आओ जरा। फिर तुम से बात करूँगा।

परेश—मैं लज्जित.......

दादा—नही धुले तो फिर धुल जायँगे बेटा ! आओ इधर बैठो मेरे पास। मैं तो तुम्हे बुलाने ही वाला था। आओ-आओ इधर आकर बैठो।

[फिर हुक्का गुडगुड़ाने लगते हैं। परेश चुपचाप आकर दादा के पास
बैठ जाता है]

दादा—(हुक्का गुडगुड़ाना छोड़ कर) मुझे कर्मचन्द से अभी पता चला है कि तुम्हारी बहू को रजाई के अबरे और मलमल का थान

पसन्द नहीं आये। देखो बेटा, तुम उसे शहर ले जाओ और उसकी पसन्द की चीजें ले दो।

परेश—मैं ..मैं.. लेकिन मैंने समझा था कि और सब ने थान और अबरे रख लिये हैं।

दादा—हाँ, और तो सबने रख लिये हैं, पर छोटी बहू को शायद ये डिजाइन पसन्द नहीं आये। तुम्हारे ताऊ ठहरे पुराने समय के आदमी। वे नये फैशन की चीजें खरीदना क्या जानें? जभी तो मैं कहता हूँ कि छोटी बहू को बाजार ले जाओ। वह स्वयं अपनी पसद की चीजें ले आयेगी।

परेश—जी.. ...

दादा—(हुक्के का एक कश लगा कर) और मैं सोचता था कि अब बहू आ गयी है तो इन्दु का दहेज तैयार करने में भी सहायता देगी।

परेश—जी, मैं इसीलिए आया था......

दादा—हाँ, हाँ, कहो झिझकते क्यों हो!

परेश—जी, बात यह है कि इस घर में बेला का मन नहीं लगता।

दादा—इतनी जल्दी उसका मन कैसे लग सकता है बेटा? अभी कै दिन हुए हैं उसे यहाँ आये? और फिर बेटा मन लगता नहीं, लगाया जाता है।

परेश—वह मन लगाती ही नहीं।

दादा—तो हमें उसका मन लगाना चाहिए। वह एक बड़े घर से

आयी है। अपने पिता की इकलौती लड़की है। कभी नाते-रिश्तेदारों में नहीं रही। इस भीड़-भाड़ से वह घबराती होगी। इतने कोलाहल से वह ऊब जाती होगी। हम सब मिल कर इस घर में उसका मन लगाएँगे।

परेश—उसे कोई भी पसंद नहीं करता। सब उसकी निन्दा करते हैं। अभी मेरे पास माँ, बड़ी ताई, मँझली ताई, मँझली भाभी, बड़ी भाभी, इन्दु, रजवा सब आयी थीं, सब उसकी शिकायत करती थीं—ताने देती थीं कि तू उसके हाथ बिक गया है, तू उसे कुछ नहीं समझाता और इधर वह उन सब से दुःखी है, कहती है—सब मेरा अपमान करती हैं, सब मेरी हँसी उड़ाती हैं, मेरा समय नष्ट करती हैं। मैं ऐसा महसूस करती हूँ जैसे मैं परायों में आ गयी हूँ। अपना एक भी मुझे दिखाई नहीं देता..... आप मेरी मानें तो .

दादा—हाँ, हाँ, कहो......

परेश—बात यह है जी कि वह आजादी चाहती है। दूसरों का हस्तक्षेप, दूसरों की आलोचना उसे पसद नहीं... . ।

[दादा सिर्फ़ हुक्का गुड़गुड़ाते हैं]

—वह समझती है कि वह छोटी बहू है इसलिए सब उसकी आलोचना करना, उसे आदेश देना अपना कर्तव्य समझते हैं...

(दादा सिर्फ़ हुक्का गुड़गुड़ाते हैं)

—और वह अपनी पृथक् गृहस्थी बसाना चाहती है। जहाँ उसे कोई टोकनेवाला न हो। जहाँ वह स्वेच्छापूर्वक अपना जीवन बिता सके। वह चाहती है कि यदि बाग वाला मकान उसे मिल जाय तो वह सुख और शान्ति से रहे। मैं तो सदैव यहाँ बना न रहूँगा, कुछ ही

दिनों की वात है। मेरी तब्दीली हो जायगी। उतने दिन को यदि आप बाग वाले मकान का प्रबन्ध कर दें!...उसकी सारी उद्विग्नता, अन्यमनस्कता और तिलमिलाहट में उसकी यही इच्छा काम करती है। अब मैं उसे कैसे समझाऊँ......

दादा—(कुछ क्षण चुप चाप हुक्का गुड़गुड़ाते हैं फिर) हूँ! (खाँसते हे) यो तो इस झंझट से छुटकारा पाने का सरल उपाय यही है कि तुम्हे बागवाला मकान दे दिया जाय—वह पड़ा भी बेकार है और अभी मैं उससे किसी तरह का काम भी लेने का इरादा नहीं रखता, पर तुम जानते हो बेटा, मेरे जीते जी यह असम्भव है। (फिर हुक्का गुड़गुड़ाते हैं) मैं जब अपने परिवार का ध्यान करता हूँ तो मेरे सामने वट का महान् पेड़ घूम जाता है (खाँसकर) शाखाओं, पत्तों, फलो, फूलो से भरा-पुरा (हुक्के के एक-दो कश लगाते हैं) और फिर मेरी आँखो के सामने इस महान् वृक्ष की डालियाँ टूटने लगती हैं और वह केवल ठूँठ रह जाता है (स्वर धीमा, जैसे अपने आप से कह रहे हैं) और मैं सिहर उठता हूँ। न बेटा, मैं अपने जीते जी यह सब न होने दूँगा। तुम चिता न करो। मै सबको समझा दूँगा—घर में किसी को तुम्हारी पत्नी का तिरस्कार करने का साहस न होगा। कोई उसका समय नष्ट न करेगा। ईश्वर की अपार कृपा से हमारे घर सुशिक्षित, सुसस्कृत बहू आयी है तो क्या हम अपनी मूर्खता से उसे तंग कर देंगे? तुम जाओ बेटा—किसी प्रकार की चिन्ता को मन मे स्थान न दो। मैं कोई न कोई उपाय ढूँढ़ निकालूँगा तुम विश्वास रखो वह अपने आपको परायों से घिरी अनुभव न करेगी। उसे वही आदर सत्कार मिलेगा जो उसे अपने घर मे प्राप्त था।

परेश—जैसा आप उचित समझें।

दादा—और देखो, तुम स्वय भी इस बात का ध्यान रखना, तुम्हारी किसी बात से उसका मन न दुखे ! कोई भी ऐसी बात न करो जिसे वह अपना अपमान समझे ।

(परेश चलने को होता है ।)

—और तुम उसे साथ ले जाकर नगर से सब चीजें खरीद लाओ। शेष की चिंता तुम न करो, मैं कोई न कोई रास्ता अवश्य निकाल लूँगा ।

परेश—जैसी आपकी इच्छा ।

[चला जाता है । दादा फिर हुक्का गुड़गुडाने लगते हैं । हुक्के के कश लम्बे हैं जो इस बात के साक्षी हैं कि दादा हुक्का पीने के साथ-साथ सोच रहे हैं]

दादा—(जैसे अचानक उन्हें कुछ सूझ गया हो) रजवा.. .. ... रजवा..... .. (फिर हुक्का गुड़गुड़ाते हैं । रजवा नहीं आती, फिर आवाज देते हैं)—रजवा.....रजवा .. ..

रजवा—(दूर से) जी आयी ।

(भागती हुई सी प्रवेश करती है)

दादा—छोटी बहू के अतिरिक्त सबको मेरे कमरे मे भेज दो । कहो कि सब काम छोड़कर मेरे पास आये (रजवा जाने लगती है) और सुनो, कोई न रहे—सब से कहना, कुछ क्षण के लिए अवश्य यहाँ आ जायँ ।

रजवा—जी मैं अभी जाकर सबसे कहे देती हूँ ।

[चली जाती है । दादा फिर हुका गुड़गुडाने लगते हैं । नल से किसी

के कपड़े धोने की आवाज़ आने लगती है। दादा और भी लम्बे-लम्बे कश लेते हैं। धीरे-धीरे कुटुम्ब के प्राणी आने लगते हैं। बालक और युवक तख्त और चारपाइयों पर बैठते हैं और स्त्रियाँ बरामदे के फ़र्श पर—रजवा उनके बैठने के लिए मोढ़े और चटाइयाँ लाकर बिछा देती है।]

दादा—(हुक्का पीना छोड कर) इन्दु कहा है वह दीखती नहीं ?

[फिर हुक्का गुडगुड़ाने लगते हैं और एक नज़र सब को देखते है। रजवा स्नानगृह को जानेवाले दरवाजे मे जाकर इंदु को आवाज़ देती है। कपड़े धोने का स्वर जो इस बीच में निरंतर आता रहा है, सहसा बंद हो जाता है]

इंदु—(बाहर से) जी आयी (अन्दर आकर) मै नल पर थी। कपड़े धोने मे लगी थी।

दादा—(एक कश खींचकर) बैठो बेटा (एक-दो क्षण तक हुक्का गुड़गुड़ाते है) मैंने आज तुम सब को एक विशेष अभिप्राय से बुलाया है। मुझे यह सुनकर बडा दुःख हुआ कि छोटी बहू का मन यहाँ नहीं लगा।

इंदु—दादाजी......

दादा—इन्दु बेटा, मुझे अपनी बात कह लेने दो। मुझे यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि छोटी बहू का मन यहाँ नही लगा। दोष उसका नहीं, दोष हमारा है। वह एक बडे घर की बेटी है, अत्यधिक पढ़ी-लिखा है। सबसे आदर पाती और राज करती आयी है। यहाँ वह केवल छोटी बहू है। यहाँ उसे हर एक का आदर करना पड़ता है; हर एक से दबना पड़ता है; हर एक का आदेश मानना पड़ता है—यहाँ उसका व्यक्तित्व दबकर रह गया है। मुझे यह बात पसंद

नहीं (कुछ क्षण हुक्का गुड़गुड़ाते हैं फिर-) बेटा बड़ा वास्तव मे कोई उमर से या दर्जे से नहीं होता। बड़ा तो बुद्धि से होता है, योग्यता से होता है। छोटी बहू उम्र में न सही, अक्ल मे हम सब से निश्चय ही बड़ी है। हमें चाहिए कि उसकी बुद्धि से, उसकी योग्यता से लाभ उठाये। मेरी इच्छा है कि उसे यहाँ वही आदर-सत्कार मिले जो उसे अपने घर मे प्राप्त था। सब उसका कहना मानें, उससे परामर्श लें और मैं प्रसन्न हूँगा यदि उसका काम भी तुम लोग आपस में बाँट लो और उसे पढ़ने-लिखने का अधिक अवसर दो। उसे अनुभव ही न हो कि वह किसी दूसरे घर में, किसी दूसरे वातावरण मे आ गयी है।

(फिर कुछ क्षण हुक्का गुड़गुड़ाते हैं, फिर)

—बेटा यह कुटुम्ब एक महान् वृक्ष है। हम सब इसकी डालियाँ हैं। डालियों ही से पेड़-पेड़ है और डालियाँ छोटी हों चाहे बड़ी, सब उसकी छाया को बढ़ाती हैं। मैं नहीं चाहता, कोई डाली इससे टूट कर पृथक् हो जाय। तुम सदैव मेरा कहा मानते रहे हो। बस यही बात मैं कहना चाहता हूँ ....यदि मैंने सुन लिया—किसी ने छोटी बहू का निरादार किया है; उसकी हँसी उड़ाई है; या उसका समय नष्ट किया है तो इस घर से मेरा नाता सदा के लिए टूट जायगा... .....अब तुम सब जा सकते हो।

[फिर हुक्का गुड़गुड़ाते हैं। सब धीरे-धीरे जाने लगते हैं।]

—इन्दु बेटा, और मँझली बहू, तुम जरा बैठो।

[दोनों के अतिरिक्त शेष सब चले जाते हैं।]

—मँझली बहू तुम अपनी हँसी को उन लोगों तक ही सीमित रखो बेटा, जो उसे सहन कर सकते हैं। बाहर के लोगों पर घर में बैठकर

हँसा जा सकता है, किंतु घर के लोगों को तब तक हँसी का निशाना बनाना ठीक नहीं, जब तक वे पूर्णतया घर का अंग न बन जायँ। और इन्दु बेटा, तेरी छोटी भाभी बड़ी बुद्धिमती, सुशिक्षित और सुसंस्कृत है; तुझे उसकी हँसी उड़ाने, उससे लड़ने झगड़ने के बदले उसका आदर करना चाहिए, उससे ज्ञानार्जन करना चाहिए। तुम दोनों को मैं इस विषय में विशेषकर सावधान रहने का आदेश करता हूँ।

(फिर हुक्का गुड़गुड़ाने लगते हैं फिर क्षण भर बाद)

—अब तुम जाओ और देखो फिर मुझे शिकायत का अवसर न मिले (गला भर आता है।) यही मेरी आकांक्षा है कि सब डालियाँ साथ-साथ बढ़ें, फलें, फूलें, जीवन की सुखद, शीतल वायु के परस से झूमें और सरसाएँ। विटप से अलग होनेवाली डाली की कल्पना ही मुझे सिहरा देती है।

(फिर हुका गुड़-गुड़ाने लगते हैं।)

इन्दु—हमें क्षमा कीजिए दादाजी, हमारी ओर से आप को कभी शिकायत का अवसर न मिलेगा।

(दोनों चली जाती हैं। दादा कुछ देर हुका गुड़-गुड़ाते हैं फिर बाहर खेलते हुए बच्चों को आवाज़ देते हैं।)

दादा—भापी, मल्लू, जगदीश, आओ, आज तुम्हे एक कहानी सुनाएँ........ ......वट के पेड़ और उसके बच्चों की . ...

भापी—(दरवाजे से झाँक कर) हम सुन चुके हैं। हम नहीं आते। हर बार वही कहानी........

मल्लू—चाँद राजा, तारा राजा की सुनाओ तो आये। हर वार वही कहानी (नकल उतार कर) एक था वट का पेड़.. .. ..

(हँसते हुए अदृश्य हो जाते हैं)

दादा—(हँसते हैं) यही कहानी—यही कहानी तो कुटुम्ब का, समाज का, राष्ट्र का निर्माण करती है। यही तो जीवन को सुदृढ़, विशाल और महान् बनाती है।

(हुक्का गुड़गुड़ाने लगते हैं—पर्दा गिरता है।)

तीसरा दृश्य

[वही बरामदा—दोनों तख्त पूर्ववत खिड़कियों के बराबर रखे हुए हैं और दो चारपायाँ वैसे ही दीवार के साथ लगी खड़ी हैं। हाँ, कुर्सी मध्य में आ गई है—ज्ञात होता है कि इस पर छोटी बहू—बेला—बैठी धूप ले रही थी—किंतु पर्दा उठने पर वह आकुलता से बरामदे में घूमती हुई दिखायी देती है—एक हाथ में पुस्तक है, मानो पढ़ते-पढ़ते कोई विचार आ जाने से उठकर घूमने लगी हो।]

बेला—(अपने आप से) मैं किन लोगों में आ गयी हूँ ? ये कैसे लोग हैं .. . . कुछ भी तो समझ नहीं सकी।...........आज कुछ है कल कुछ। पल मे तोला पल मे माशा।..........इनका कुछ भी तो पता नहीं चलता।

(फिर सोचती हुई धीरे-धीरे घूमती है।)

—गर्म होते हैं तो आग बन जाते हैं और नर्म होते हैं तो मोम से भी कोमल दिखायी देते हैं। आज जिस बात को बुरा कहते हैं कल उसी की प्रशंसा करते हैं—मैं तो तंग आगयी इन लोगों से।

[जाकर फिर कुर्सी पर बैठ जाती है और पुस्तक खोल लेती है। अन्दर गैलरी से उसकी सास, छोटी भाभी आती हैं।]

छोटी भाभी—तुम ठीक कहती थी बेटी—इस रद्दी सामान से बैठक, बैठक नहीं, कबाड़ी का गोदाम दिखायी देती थी। सोचती थी कि यह सामान इतने दिनों से इस कमरे में पड़ा है, कुछ ऐसा बुरा भी नहीं; और इस पर इतनी देर से सब बैठते आ रहे हैं; कहीं दादाजी बुरा न मानें, पर अच्छा किया तुमने जो यह सब उठा दिया। मैंने परेश से कह दिया है—तुम उसके साथ जाकर अपनी रुचि का सामान खरीद

लाओ। यह सब मैं रजवा से कहकर सुरेश के कमरे में भिजवा देती हूँ। कई बार निगोड़ी इन्हीं कुर्सियों के लिए वह मुझसे रूठ चुका है।

बेला—आप बैठिए माँजी......

छोटी भाभी—बस तुम बैठो बेटी। मैं तो यों ही तुम्हें इधर बैठे देखकर चली आयी। अनाज पड़ा है, उसे फटकना है; मिर्चें पड़ी हैं उन्हें कूटना है; मक्खन कई दिनों का इकट्ठा हो गया है, उसका घी बनाना है,—बीसों दूसरे काम हैं, और दिन ढल रहा है। मैं सोचती थी, तुमने मेरी बात का बुरा न माना हो। वास्तव में बेटी, रजवा मेरे पास आकर फूट-फूट कर रो दी। नौकरानी समझदार, विश्वसनीय और आज्ञाकारी है, किंतु जो काम उसने कभी किया ही न हो, वह उससे किस प्रकार हो सकता है!

बेला—(उठती हुई) आप बैठिए तो... ..

छोटी भाभी—(उसके कंधों पर हाथ रख कर उसे बैठाते हुए) बैठो-बैठो बेटी, कष्ट न करो। मैं तुम्हारा अधिक समय नष्ट न करूँगी। मैं तो केवल तुमसे उसकी सिफ़ारिश करने आयी थी। भावुक स्त्री है, जल्दी ही बात का बुरा मान जाती है। तुम यों करना कि ज्यों ही नया फ़र्नीचर आजाये, अपने सामने लगवाकर रजवा को एक बार झाड़ना-बुहारना सिखा देना। फिर वह गलती नहीं करेगी। न हो तो कभी मुझे बता देना। मैं उसे समझा दूँगी।

बेला—नहीं, नहीं आप......

सास—तुम पढ़ी-लिखी समझदार हो बेटी, इसलिए तुमसे इतना कह दिया है। यों तुम न चाहो तो कोई दूसरा प्रबंध हो जायगा। तुम इस बात की तनिक भी चिंता न करो।

(चलने को उद्यत होती है।)

बेला—आप बैठिए तो सही.........

सास—नहीं-नहीं, तुम अपने पढ़ो। मैं वृथा तुम्हारा समय नष्ट न करूँगी।

(चली जाती है)

बेला—(पुस्तक बन्द कर के लम्बी साँस लेती हुई जैसे अपने आप) इन लोगों की कुछ भी तो समझ नहीं आती। ये माँजी एक दम कैसे बदल गयीं! अभी परसों मुझे इसी रजवा के लिए डाँट रही थीं। इनका कुछ भी तो पता नहीं चलता।

[फिर पढ़ने लगती है। बड़ी बहू और मँझली भाभी बाहर के दरवाजे से प्रवेश करती हैं]

मँझली भाभी—क्यों बेटी, अब रजवा कुछ काम सीख गयी है या नहीं? (ज़रा हँसती है) बुढ़िया है तो सयानी.....

बड़ी बहू—आपने इन्दु से ठीक ही कहा था। हमें वास्तव में काम की परख नहीं, पर अब......

बेला—आइए, इधर बैठिए, चारपाई सरका लीजिए।

मँझली भाभी—(वैसे ही खड़े-खड़े) मैंने एक अनुभवी नौकरानी खोज लाने के लिये कह दिया है जो नये फैशन के बड़े घरों में काम कर चुकी हो। वास्तव में बहू, दादाजी पुराने नौकरों के हक में हैं—ये दयानतदार होते हैं और विश्वसनीय। हमारे पास पीढ़ी-दर-पीढी काम करते आ रहे हैं। इस रजवा की सास भी यहीं काम करती थी; अब रजवा की बहू भी यहीं काम करती है..

बड़ी बहू—मैं कहती हूँ बहिनजी, आप रजवा की बहू को ही अपने पास क्यों नहीं रख लेतीं . ...उसकी वयस भी कम है और काम भी वह जल्दी सीख जायगी।

बेला—(अन्यमनस्क-सी) नहीं, नये नौकर की आवश्यकता नहीं। रजवा काम सीख जायगी, (कुछ चिढ़ कर) पर आप खड़ी क्यों हैं ?

मँझली भाभी—हम तुम्हारा हर्ज न करेंगी......

बेला—(और भी चिढ़ कर) मेरा कुछ हर्ज नहीं होता।

बड़ी बहू—हम आपसे छोटी हैं, वर्ग में भी और बुद्धि में भी......

बेला—(रुआँसी आवाज़ में) आप मुझे क्यों काँटों में घसीटती हैं . ...आप मेरे साथ क्यों परायों का सा व्यवहार करती हैं.. ......

(उठ खड़ी होती है)

बड़ी बहू—बैठिए-बैठिए, मँझली भाभी, आप भी बैठिए........

बेला—मैं चलती हूँ......

(रुलाई को रोककर आँखों पर रुमाल रखे जल्दी-जल्दी चली जाती है।)

मँझली भाभी—(जैसे अपने आपसे) परायों का सा.. .

(बाहर से मँझली बहू के कहकहे की आवाज़ आती है—दूसरे क्षण वह इन्दु और पारो के कन्धे पर झूलती हुई बाहर के दरवाज़े से आती है)

इन्दु—सच...... . .

मँझली बहू—(हँसी रोक कर) और क्या मैं झूठ कह रही हूँ। मैंने अपनी इन दो आँखों से देखा (हँसती है) मलावी ने सारी की

सारी छत फावड़े से खोद डाली और वंसीलाल महाशय मुँह देखते रह गये।

(सब ठहाका मार कर हँस पड़ती हैं)

बड़ी बहू—भई मुझे भी बताना...क्या किया मलावी ने...सच।

[मँझली बहू चारपाई बिछा कर उसमें धँस जाती है। उसकी एक ओर इन्दु और दूसरी ओर पारो बैठ जाती हैं मँझली भाभी कुर्सी पर बैठती है और बड़ी बहू खड़ी रहती है]

मँझली भाभी—(कुर्सी को ज़रा खिसका कर समीप होते हुए) वंसीलाल के सामने उखाड़ कर फेंक दी छत मलावी ने!

मँझली बहू—मैं कहती हूँ, मुँह देखते रह गये बंसीलाल महाशय, ताका किये मुटर-मुटर......

(सब ठहाका लगाती हैं।)

बड़ी बहू—अरे कौन सी छत खोद डाली, यह तो बताओ......

मँझली बहू—रसोई की और कौन सी। अभी दो घंटे हुए कि राज-मजदूर छत डालकर गये थे और बंसीलाल कारीगरों और मजदूरों से निपट कर अभी दूकान को गया था कि आ गयी उधर से मलावी मारामार करती। जाने किसने उसे जाकर बताया कि तुम्हारे देवर ने अपनी रसोई पर छत डाल ली है। लेके फावड़ा बस सारी की सारी छत उसने खोद डाली। बंसीलाल तब पहुँचे जब अन्तिम कड़ी भी उखड़ चुकी थी। तब क्या करते—बस ताँका किये मुटर-मुटर......

(मँझली भाभी को छोड़ कर सब हँसती हैं)

मँझली भाभी—पर बंसीलाल का लड़का......

मँझली बहू—गली के सिरे पर खड़ा खम ठोंक रहा है।

(जघा पर हाथ मार कर बताती है कि कैसे खम ठोक रहा है)

इंदु—खम ठोक रहा है ?

मँझली बहू—(कहकहा लगाती है) सच, खम ठोक रहा है और हवा ही में ललकार रहा है कि मैं ड्योढ़ी की छत खोद डालूँगा—मैं मकान को खण्डहर बना दूँगा। मैं यह करूँगा—मैं वह करूँगा और इधर मलावी कमर कसे खड़ी है कि आये जो माई का लाल है, रक्खे पाँव घर के भीतर......

(सब हँसती हैं)

इंदु—(अगुली ओठों पर रख कर) शश. श.. श भाभी आ रही हैं।

(हँसी एक दम बन्द हो जाती है; सन्नाटा छा जाता है—बेला एक हाथ में बन्द किताब थामे धीरे-धीरे सीढ़िया उतरती है।)

बेला—क्यों जीजी, आप चुप हो गयीं (जरा हँसकर) किस बात पर कहकहे लगाये जा रहे हैं ?

मँझली भाभी—(कुर्सी से उठ कर) यों ही हँस रही थी। आओ। इधर कुर्सी पर बैठो।

बेला—नहीं-नहीं आप बैठिए। मैं इधर तख्त पर बैठ जाती हूँ।

मँझली बहू—(जल्दी से उठ कर) आइए-आइए, आप इधर बैठिए।

इंदु और पारो—(दोनों चारपाई से उठ जाती हैं) आइए-आइए, आप इधर बैठिए।

[फिर नीरवता छा जाती है जिसमें एक प्रकार की घुटन है। बेला बाहर की ओर चल पड़ती है।)

इंदु—बैठिए भाभीजी, आप चली क्यों ?

बेला—(मुड कर क्लान्त तथा भारी स्वर मे) मैं तो उधर ही जा रही थी। यों ही जाते-जाते खडी हो गयी। मैं आपकी हँसी मे बाधा नहीं डालना चाहती। (खिन्न हँसी के साथ) आप हँसिए, कहकहे लगाइए।

(चुपचाप अहाते के दरवाजे से निकल जाती है)

मँझली बहू—मै कहती थी न कि इस ओर न आओ ! मेरी मुई आदत हुई हँसने की।

इंदु—अब एक यही स्थान था बैठने को......

मँझली बहू—हम हँसती हैं तो हँसती है दिल से और छोटी बहू के अध्ययन मे बाधा पड़ती है। मैं कहती हूँ दादाजी को यदि पता चल गया कि हमारे यहाँ बैठने से छोटी बहू के पढ़ने मे खलल आता है तो वे......

इंदु—किंतु यही एक जगह थी पर्दे वाली......

मँझली बहू—तुम भूल गयीं हमे ही तो दादाजी ने खास तौर पर सतर्क रहने को कहा था (कहकहा लगा कर हँस पड़ती है।) मैं कहती हूँ चलो मेरे कमरे मे . . .

इंदु—मुझे तो दादाजी के कपड़े धोने हैं, मैं चली।

(जल्दी-जल्दी बाहर की ओर चली जाती है।)

मँझली भाभी—ठीक है। तुम लोग अब यहाँ इतना न बैठा करो

(बड़ी बहू से) हम तो वह गोदाम में जा रही थीं, चलो गेहूँ छटवा लें। छोटी बहिन तो कब की गयी हुई है। फिर तो अस्त हो जायगा दिन, और महरियाँ चली जायँगी।

बड़ी बहू—मैं तो फँस गयी मँझली की बातों में...चलो ..चलो।

(दोनों चली जाती हैं)

मँझली बहू—मैं कहती हूँ पारो चल मेरे कमरे में। वहाँ चल कर बैठ।

पारो—मुझे तो जाना है भाभी। लल्ला आ गया होगा, न मिली तो चिल्लायेगा।

मँझली बहू—(अपने आप से) यह छोटी बहू तो उकाब-सी आकर सबको डरा गयी।

[हँसती है। बाहर से बड़ी भाभी आती हुई दिखायी देती हैं, भाग कर उसके पास जाती है।]

—बड़ी भाभी, सुनी तुमने मलावी की बात ? खोद डाली उसने सारी की सारी छत।

(कहकहा लगाती है)

बड़ी भाभी—मलावी ने छत खोद डाली . ..

मँझली बहू—(उसे अपने साथ लेकर कमरे की ओर जाती हुई) हाँ, हाँ, अभी राज-मजदूर छत बना कर गये थे कि आ गयी मलावी मारो-मार करती . ..

बड़ी भाभी—पर .....

मँझली बहू—चलो मेरे कमरे में। वहाँ चल कर सब बताती हूँ। यहाँ तो छोटी बहू की पढ़ाई में बाधा पड़ती है।

बेला—किंतु उन्होंने यह सब क्यों कहा ? मैंने तो कभी उनसे इस बात की शिकायत नहीं की ?

इन्दु—शायद छोटे भय्या ने उनसे यह कहा था कि आपका जी यहाँ नहीं लगता आप बागवाले.. ..

बेला—ओह ! यह बात है।

इन्दु—दादाजी और सब कुछ सह सकते हैं—किसी का पृथक् होना नहीं सह सकते—"हम सब एक महान् पेड़ की डालियाँ हैं" वे कहा करते हैं "और इससे पहले कि कोई डाली टूट कर अलग हो, मैं ही इस घर से अलग हो जाऊँगा" और उन्होंने हम सबको समझाया कि हम आपका आदर करें, काम करें और आपको पढ़ने-पढ़ाने का समय दें।

बेला—पर मैं तो आदर नहीं चाहती और मैं तो तुम सबके साथ मिल कर काम करना चाहती हूँ।

इन्दु—यह कैसे हो सकता है भाभीजी ..

बेला—(दीर्घ श्वास छोड़ती हुई) आप लोगों ने मुझे कितना गलत समझा और मैंने आप लोगों को कितना.. –

इन्दु—आप कैसी बातें करती हैं। लाइए कपड़ लाइए मैं दादाजी के कपडे धोने जा रही हूँ, साथ ही आपके भी फटक लाऊँ।

बेला—(चुप सोचती है)

इन्दु—भाभीजी . .

बेला—(जैसे मन-ही-मन उसने किसी बात का निश्चय कर लिया हो) मैं भी तुम्हारे साथ जाऊँगी, मैं भी तुम्हारे साथ कपडे धोऊँगी।

इन्दु—दादाजी नाराज न होंगे . ...

बेला—मैं दादाजी से कह दूँगी।

इन्दु—भाभीजी . ...

बेला—मुझे केवल भाभी कहा कर, मेरी प्यारी इन्दु !

इन्दु—(प्यार से भरे हुए गले के साथ) भाभी... !

बेला—चल कपड़े धोएँ। धूप निकली जा रही है।

इन्दु—पर कपडे.. ..

बेला.. मेरे कपडे आज रजवा ने धो दिये थे, शलवार कमीज ही तो थी। चल मैं तेरी सहायता करूँगी।

[दोनों चली जाती हैं कुछ क्षण बाद बरामदे में कपडे धोने का शब्द आने लगता है। दादा गैलरी की ओर से हुक्का गुड़गुड़ाते गुड़गुड़ाते, मल्लू की अँगुली थामे प्रवेश करते हैं।]

दादा—हाँ, बेटा तुम्हें मेले मे ले चलेंगे। जो तू कहेगा वही खिलौना ले देंगे।

मल्लू—मैं तो उड़न खटोला लूँगा।

(सहसा बाहर के दरवाजे के पास जाकर ठिठक जाते हैं)

दादा—(आश्चर्य से) हैं ! छोटी बहू......

इन्दु—(बाहर से) मैंने तो बहुतेरा कहा पर भाभी मानी नहीं।

दादा—छोटी बहू, इधर आ बेटी !

(शरमाई हुई बेला दरवाजे के पास आ खड़ी होती है,)

बेटा—कपड़े धोना तुम्हारा काम नहीं। पढ-लिख कर...

इन्दु—(जो अपनी भाभी के साथ ही आ खड़ी हुई है) मैंने बहुतेरा कहा पर भाभी मानी...

दादा—(जिन्हें इन्दु के स्वर का अनादर अच्छा नहीं लगा) इन्दु, तुझे इतनी बार कहा है कि आदर से......

बेला—(भावावेश के कारण रुँधे हुए कण्ठ से) दादाजी, आप पेड़ से किसी डाली का टूट कर अलग होना पसन्द नहीं करते पर क्या आप यह चाहेंगे कि पेड़ से लगी-लगी वह डाल सूख कर मुरझा जाय...

(सिसक उठती है, हुक्के की गुड़गुड़ाहट एक दम बन्द हो जाती है)

[पर्दा सहसा गिर पड़ता है]